असमर्थ, इस लिए उस्तरे से नापित के पास सिर मुंडवाना शुरू किया, साधु अचित्त प्रासुक जल गृहस्थ का दिया मिले तो लेते हैं, अन्यथा तृषा सह सम्भाव सहते है। मरीचि ने अपने सुखार्थ वस्त्र से छाना हुआ जलार्थ कमं धारण किया, सचित्त जल कच्चा सर्वत्र मिल सकता है, जैन साधु ४२ दं विवर्जित आहार एषणीय होवे तो लेते है अन्यथा तपोवृद्धि सममाव साधते हैं। मरीचि ने गृहस्थ के घर जैसा मिले वहां जाकर वा निमंत्रण से भोजन करना शुरू किया, पद में पदरक्षा धारण करी, आतप (घूप) रक्षार्थ छत्र धारण किया। जैन मुनि इन दोनों से वर्जित हैं। इस का शिष्य एक राजपूत कपिल देव हुआ, उस ने २५ तत्व कथन किये। अपने शिष्य आसुरी को, फिर क्रम २ से एक सांख्य नाम इन के शिष्य से इस मत का नाम सांख्य प्रसिद्ध हुआ। कपिलदेव ने जगत् का कर्त्ता ईश्वर है ऐसा नहीं माना, संसार के सर्व भेष एक जैन धर्म के बिना सर्व का आदि बीज यह कपिलदेव् हुआ।

ऋषभदेवजी का बड़ा पुत्र भरत चक्रवर्ती जिसके दिग्विजय से यह षट् खंड भूमि भरतक्षेत्र के नाम से प्रसिद्ध हुई, उसने अपने ९९ भाईयों को अपनी सेवार्थ बुलाये, तब ९८ भाई तो भरत की सेवा यदि पिता आज्ञा देंगे तो करेंगे ऐसे विचार भगवान् को पूछने कैलास पर गये, तब भगवान् उन को हाथी के कान की तरह चंचल राज्यलक्ष्मी दर्शाकर वैराग्य के उपदेश से साधुव्रत ग्रहण कराया वे सर्व केवल ज्ञानी होगये, ऐसा स्वरूप सुन भरत सम्राट् चित्त में चिंता करने लगा, प्रभु चित्त में जानते होंगे कि मेरी दी हुई राज्य लक्ष्मी भरत अपने भाइयों से छीननेलगा इसलिये भरत दुर्विनीतहै, इसलिये अब भाइयों को भोजनादि भक्ति कर प्रसन्न करूं तो पिता प्रसन्न हो जायगे, ऐसा विचार अनेक भांति के भोजन [illegible] नम्रता पूर्वक भोजन

किसको खिलाऊं वहां सौ धर्मेन्द्र ने भरत का खेद मिटाने के लिये कहा हे सार्व्वभौम ! तेरे से जो गुणों में अधिक हो उनको यह भोजन करा, तब भरतचक्री प्रसन्न हो अयोध्या आया, अपने से गुणों में अधिक द्वादशव्रत धारक श्रावक धर्मी जनों को जान कर उन को बुलाया। वे उस समय उत्कृष्टधर्मी पांचसय संख्यावाले अयोध्या में थे उन को वह भोजन कराया, उन की आचरणा से भरत अत्यन्त हर्षित हुआ और कहने लगा मेरे सर्वदा कोट्यावधि जीव भोजन करते हैं वह सर्व स्वार्थ है, आप जैसे धर्मी जन सुपात्रों को भोजन कराना निरंतर परमार्थ रूप है। आप मेरे यहां सर्वदा भोजन किया करें, तब उन्हों ने कहा हे नरपति! पर्व्व तिथि आदि में तो हम उपोषित रहते है, सामान्य दिवस में भी एकासन से न्यून तप नहीं करते, बाकी आंबिल निवि आदि तप पोसह, षडावश्यक, देशावगासिक आदि भाव क्रिया, जिनार्चन आदि नित्य कर्त्तव्य हमारा है। तब भरत राजा उन के धर्म कर्त्तव्य करने, पोषधशाला तथा यथा रुचि भोजन भक्ति करने को चार सूपकार (रसोईदार) अन्य खिदमतगार का प्रबन्ध कर उन को अपने सभा मंडप के समीप धर्म करने, भोजन करने तथा रहने की आज्ञा दी।

वे वृद्ध श्रावक महा माहण कहलाये, इन के पठन पाठनार्थ चार वेद भरत राय ने ऋषभदेव के उपदेशित गृहस्थ धर्मानुकूल रचे। दर्शन वेद १ (सम्यक्त का स्वरूप) दर्शन संस्थापन परामर्शन वेद २ (इसमें दर्शन पर कुतर्क करने वालों का समाधान) तत्त्वावबोधवेद ३ (इसमें नवतत्व षट्द्रव्य श्राद्धव्रत साधुव्रतादि मोक्ष मार्ग) विद्या प्रबोध वेद ४(इसमें व्याकरणादि षट् शास्त्र ७२ कला विज्ञान आदि) इन चार वेद को पढकर जो ५ आचार की शिक्षा करते थे उन को षट् मास की अनुयोग परीक्षा करने पर आचार्यपद जो अन्य माहन को ४ वेद का अध्ययन कराते थे, उन को उवझाय पद, बहु श्रुति को आर्षपद, धर्म कथक हेतु युक्ति दृष्टांत द्वारा उन को व्यास पद, कल्याणक तपकर्त्ताओं को कल्याण पद, इन्हों में अग्रगण्य को पुरोहित पद एवं पर्वतिथि में पोसह करनेसे पोसहकरना जाति स्थापन करी, चार वेद पाठी, चउव्वेयी। इस प्रकार वृद्धश्रावक महामाहन की उत्पत्ति हुई। एकदा भरत सम्राट् ने भगवान् से विनती करी कि हे तरणतारण! आप सर्वसंसार धर्म गृहस्थ अवस्था में प्रवर्त्तन कर १. उग्र २. भोग ३. राजन्य ४. क्षत्रिय एवं ४ कुल स्थापन किये तैसे मैंने धर्मी जन का माहन वंश स्थापन कर सर्व अधिकार सामान्य प्रजागण को

उच्च शिक्षा देने का दिया है और भोजनादि विशेष भक्ति में करता हूं, मेरे माननीय होने से ३२ हजार भारतवासी राजा तथा प्रजा इन को पूज्य भाव से मानते है, तब परमेश्वर ने कहा हे भरत! तेने तो अच्छा ही किया है लेकिन आगामी काल में इन का वंश वृद्धि पाकर भिन्न २ जाति स्थापित होगी। नवमें सुविधनाथ अर्हंत के निर्वाण पीछे जिन धर्म के साधु विच्छेद होंयगे तब सर्व प्रजा इनको धर्म पूछेंगे उस समय यह अपने महत्व की पुष्टि निज स्वार्थ सिद्धयर्थ अनेक कुविकल्प रूप ग्रंथ जाल रचते चले जावेंगे। जीवहिंसा, मृषा वचन, अदत्त मैथुन, अगम्य गमन, अपेय पान, अभक्ष भक्ष ऐसा कोई कुकृत्य नहीं जो इस वंश वाले नहीं करेंगे और तद्रूप ग्रंथ रचेंगे। पात्र अल्पतर कुपात्र ही प्रायः होंयगे। जिनोक्त तत्व सत्य धर्म के परम द्वेषी व नष्टकर्त्ता होंयगे, प्रजागण तरणतारण इन को गुरु भाव से पूजेंगे। इन की आज्ञा शिरोधार्य करेंगे फिर जब शीतल १० मां तीर्थंकर होगा तब उनके उपदेश से कई एक भव्य जीव पुनः धर्म के श्रद्धावंत होंयगे।

इस प्रकार सोलमें तीर्थंकर पर्यंत जिन धर्म प्रवर्त्तन हो हो कर विच्छिन्न होता जावेगा। इतने में अनेक पाषंड मिथ्यात्व रूप महातिमिर भारत क्षेत्र में विस्तार पावेगा। उगणीसमें बीस में तीर्थंकर के मध्य में पर्वत ब्राह्मण महाकाल असुर की सहायता से बकरा हवन कर मांस भक्षण करना ऐसा कृत्य वेद का मूल अर्थ पलटा के शुरू करेगा, बीस में तीर्थंकर के निर्वाण पीछे याज्ञवल्क्य ब्राह्मण तेरे रचे वेद को त्याग नई श्रुतियें हिंसा कारक रूप रचेगा, जिसका नाम शुक्ल यजुर्वेद रखेगा, उस के पीछे जंगल में रहनेवाले अनेक जीवों के मारने रूप अनेक ब्राह्मण वेद का नाम धरकर श्रुतियें रचेंगे उनकी रची श्रुतियों में उन २ ऋषियों का नाम रहेगा, उन सब ऋषियों के पास फिर २ के नेम तीर्थंकर के कुछ पहिले पराशर का पुत्र द्वीपायन ब्राह्मण उन हिंसाकारक मंत्रों को ताड़ पत्र पर लिखकर एकत्रित करके उसके ३ भाग करेगा ऋक् १, यजुः २ और साम ३, तब सब ब्राह्मण उसे वेद व्यास कहेंगे, पीछे नेम तीर्थंकर का उपदेश सुनकर व्यास के हृदय में सत्य अहिंसा रूप जिन धर्म की श्रद्धा उत्पन्न होगी तदनंतर कृष्ण नारायण की आज्ञानुसार गीता, भारत आदि में सात्विकी लेख भी स्वरचितः पुराणादि इतिहासों में स्थल २ में लिखेगा और किसी स्थल में पूर्व गृहीत हिंसा जनक लेख भी लिखेगा। इस हुंडा अवसर्पिणी काल में असंयतियों की पूजा

होने रूप आश्चर्यजनक वार्त्ता यह प्रकट होगी, पीछे २३वें तीर्थंकर पार्श्व होंगे उन का नाम सर्वस्वमत परमत विख्यात होगा, तदनंतर मरीचि तेरा पुत्र जिसने गेरू रंगित पूर्वोक्त वेष उत्पन्न किया उसका जीव २४ वां महावीर नाम का तीर्थंकर होगा वह साढा पचवीस देश में स्व उपदेश से सौ राजाओं को जिनधर्मी करेगा। गोतम गोत्रीय आदि ४४०० ब्राह्मण जीव हवन करते हुओं को सत्य, अहिंसा परम धर्म को स्याद्वाद न्याय से प्रतिबोध देकर एक दिन में जैनी दीक्षा साधुव्रत देगा उनके उपदेश से प्रायः हिंसाजनक यज्ञ वेदोक्त कर्मकांड भारत से दूर होगा। ब्राह्मण भी प्रायः पुराणों का आश्रय लेंगे। आजीविका के लिये धर्म के बहाने से अनेक मार्ग उत्पन्न करेंगे इत्यादि भावी फल संपूर्ण।

भरत चक्रवर्त्ती को भगवान् ने कथन किया भावी फल वह बहुत है। इस जगह लिखने के लिये स्थान नहीं। सर्व तीर्थंकर केवल ज्ञानी का तथा सामान्य केवल ज्ञानी का तत्वमय उपदेश एक रूप है, केवलज्ञानी जब तक होते रहे तब तक उन का कहा विज्ञान मुनिजन कंठाग्र अपने २ क्षयोपशमानुसार धारते रहे। जब काल दोष से शक्ति न्यून होती गई तब से जिनोक्त ज्ञान आचार्यों ने पुस्तक रूप से लिखा जो परंपरागत याद रहा था, उस में जो मोक्ष प्राप्त करने का मार्ग था उस को आवश्यक समझ साधु जन के आचरण के लिये आगम नाम रूप से लिखा, अन्य को पयन्ना (प्रकरण) रूप से लिखा। एक कोटि संख्या प्रमाण जैनागम विक्रम राजा के पांचवी शताब्दी में २ पूर्व्व की विद्या पुस्तक रूप लिखे गये वे १० नाम से विख्यात हुए। अनुयोग द्वार सूत्र में वे १० नाम लिखे है (१) सुत्ते (२) गथे (३) पयन्ने (४) आगमे इत्यादि। इसलिए सूत्र ग्रंथ प्रकीर्ण आगम एकार्थ वाचक होनेसे सर्व केवलज्ञानी के कथनानुसारहै, जिस२ समय जिस आचार्यादि ने उन कैवल्योक्त वचनों की एक संकलना करी वह ग्रंथ उस संकलना कारक के नामसे प्रसिद्धिमें विख्यातहुआ लेकिन वह ग्रंथ ज्ञान उस कर्त्ता का नहीं, वह सर्व ज्ञान केवली कथित ही जिन धर्मी प्रमाणीक पुरुषों ने लिखा है। (दृष्टांत) जैसे मै ने संग्रह कर्त्ता ने यह जैन दिग्विजय पताका का संग्रह कियाहै इसको तत्व के अनभिज्ञ मेरा रचाहुआ कहेंगे, लेकिन तत्वदृष्टिवाले कदापि ऐसा नहीं कहेंगे। मुझ अल्पज्ञ का ऐसा क्या सामर्थ्य है जो मैं मनोक्त कल्पना करूं, सर्वथा नहीं, परंपरागत शास्त्रानुसार अनेक ग्रंथ में से

उद्धृत कर यह संग्रह प्रकाश में लाया हूं। जो प्रमाण रहित वचन हो वे सर्वदा अमान्य होते हैं, प्रमाण युक्त वचन को मतांध पुरुष यद्यपि नहीं मानते, क्योंकि उन्हों के हृदय में मतांतरियों ने कुतर्क रूप जाल बिछा दिया है जैसे पित्त-ज्वर वाले को मिश्री भी कड़वी मालुम पड़ती है लेकिन मिश्री कदापि कड़वी नहीं है यह नीरोग पुरुष ही जानता है तैसे इस संग्रह ग्रंथ का ज्ञान समदृष्टि पुरुषों को अवश्य माननीय होगा, जैसे भर्तृहरि राजा ने लिखा है:—

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः।
ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्मापि तं नरं न रञ्जयति ॥ १ ॥

अर्थ—अज्ञानी को सुख से ज्ञान देने से शायद समझ भी सकता है, विशेष ज्ञानवंत तो न्याय वचन द्वारा शीघ्र ही समझता है और ज्ञानलव से दुर्विदग्ध (अर्थात् अधजला) मतांतरियों के कुज्ञान से उस पुरुष को ब्रह्मा भी ज्ञान देने में समर्थ नहीं होता।

सर्वज्ञ सर्वदर्शी के विद्यमान समय में भी ३६३ पाखंडियों ने अपना हठवाद नहीं त्यागा था। २४में तीर्थंकर के निज शिष्य गोशाला तथा जमाली की कुमति ने दुर्गति में परिभ्रमण करने रूप आनुपूर्वी ने सत्य श्रद्धान का वमन करादिया था एव ९ निन्हव आज तक जैन धर्म में प्रकट हो गये अन्य की तो बात ही क्या, क्योंकि जिन के बालपन से लशुन के गन्ध रूप, कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र रूप अधर्म श्रद्धा हो रही है वे कदापि कस्तूरी की सुगंधि रूप सच्छास्त्र की ओर लक्ष नहीं देते। कोई प्रेक्षावान् न्यायसंपन्न बुद्धिवाले जिन को संसार से शीघ्र मुक्ति होनी है ऐसे पुरुष ही इस ग्रन्थ को पढ़कर, सुनकर सत्यासत्य के परीक्षक होंगे। अपने मत की पोल न खुल जाय, इसलिए अपने बाड़ों के बच्चों को ऐसा भयसानरूप वचन सिखारखाहै कि हस्तिना पीड्यमानोऽपि न गच्छेज्जिनमंदिरम् बस इस लकीर के फकीर तत्वज्ञान के अंधे कहते हैं कि हाथी से मरजाना लेकिन जैन मंदिर में नहीं जाना, कोई पूछे किस वेद में, किस स्मृति, भारत, रामायण या वसिष्ठ गीता आदि इतने आप लोगों के प्राचीन ग्रंथ हैं उन में किस शास्त्र का यह कथन है और नहीं जाना इस का कारण क्या? और इस में कौन सा प्रमाण है। तब एक हिया शून्य ने कहा, जैन का देव मूर्त्ति नग्न है इस लिए नहीं जाना कहा है। (उत्तर) हे मतांध! प्रथम तो जिनमूर्त्ति के

नग्नपने का कोई (आकार) चिन्ह नहीं है जो तुम ने देखा हो, प्रत्यक्ष मिथ्या बोलते हो तथापि हम तुम से पूछते है—एकदा हम ने फागण वदि चतुर्दशी को देखा कि तुम्हारे मतावलंबी स्त्री पुरुष सर्व ऐसे स्थान में गये थे जहां नीचे तो पाषाण का बाण (स्त्री का भग) उस में एक पुरुष का खड़ा हुआ पुरुष चिन्ह डाला हुआ उस को सर्व जन दंडवत प्रणाम कर आक धतूरे आदि पुष्प गंध से पूजा करते थे, कहिये! इससे कोई अधिक निर्लज्ज नग्नता अन्यत्र नहीं होगी। ऐसी स्थापना की मानता करते हुए आपको किञ्चित् भी विचार नहीं होता होगा ? अब विचार पूर्वक वर्ताव करना बुद्धिमानों का कृत्य है, रागी और द्वेषी इन दोनों को सत्य भी असत्य भासता है, इस २ प्रकार के झूठे फंद अनेकानेक अपनी असत्य कल्पना को कोई छोड न देवे तब ज्ञान शून्य मनुष्य को स्वमत में थिर करने स्वार्थ सिद्धि करने के लिये ऐसी गप्प रच रखी है। यह तो जगत्प्रसिद्ध न्याय है कि संसार के बंधन में फंसे हुए काम, क्रोध, मोह मग्न को उद्धार करने के लिए राग द्वेष वर्जित यथार्थ मुक्ति मार्ग के दायक तरणतारण की पूजा उपासना करनी योग्य है। देखो कृष्णोवाच—ज्ञानवैराग्य मे देहि त्यागवैराग्यदुर्लभम् (गीता) । लौकिकवाले कहतेहै कि जब भक्तजन में संकटआपदा विशेष देखतेहै तब पृथ्वीका भार उतारने के अर्थ भगवान् अवतार लेते है। जो भगवान् शाश्वत और अनंत शक्तिवंत हैं जब वे माता के उदर में महाअशुचि स्थान अवतरते है तब तो उनका जन्म मरण होने से शाश्वतत्व नष्ट होता है और गोलोक भी उस समय शून्य होजाता होगा क्योंकि भगवान् तो मृत्यु लोक में पधार जाते है फिर ऐसा मानने से उस भगवान् में अनंत शक्ति का भी लेश नहीं रह सकता क्योंकि अनंत शक्ति वाला परमेश्वर स्वस्थान स्थित भक्त जन का क्या संकट काटने में समर्थ नहीं था? सो स्त्री के गर्भ में अवतार धारना पड़ा, और युद्ध संग्राम करने रूप महा विपदा उठाई। विद्यमान समय में अपने भक्त जनों के शायद संकट लौकिक में धन प्रमुख उन भक्तों के कर्मानुसार देकर काटा होगा और अपनी आज्ञा नहीं मानने वालों को प्राणघातादि कर्मानुसार दंड भी दिया होगा क्योंकि वर्तमान में राजादिकों का हम ऐसा स्वरूप देख रहे है, लेकिन परोक्ष में भक्त जन का संकट काटना प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध नहीं होता।

आप लोग कहते हैं कि भगवान् मत्स्य, कच्छ, वाराह आदि २४ अवतार

भक्त जनों के संकट काटने को धारण किये खैर मानलो, लेकिन जो उत्तम पुरुष जिस जाति कुल में अवतार लेता है उस जाति- कुल के आपदा की रक्षा स्वशक्त्यनुसार अवश्य करता है लेकिन भगवान् तो सर्व शक्तिमान् हैं उन्होंने जिस मत्स्य जाति में अवतार लिया उस मत्स्य जाति को कनौजिये, सरवरिये, बंगाली ब्राह्मण तथा शूद्रवर्ण, यवन, म्लेच्छ आदि निरंतर भक्षण किया करते है और करेंगे इसी प्रकार कच्छप को, वाराह (सूकर को) संहार कर पूर्वोक्त जाति भक्षण करती है जिसमें यवन सूकर को भक्षण नहीं करते है। इसी प्रकार हयग्रीव (घोड़े) का अवतार भगवान् ने धारण किया उस अश्व जाति को यवन जाति तथा फ्रान्स देश वाले आदि मार कर भक्षण करते हैं इस प्रकार स्वजाति कुल की रक्षा ही तुम्हारा भगवान् नहीं करता तो फिर कैसे यकीन हो कि उनके ध्याता भक्त जन की वह रक्षा करेगा। फिर तुम कहते हो भगवान् की सर्व १६ कला हैं सो कृष्ण नारायण पूर्ण सोलह कला का अवतार था, खैर मानलो, लेकिन उस कृष्ण नारायण के विद्यमान समय में ३ अवतार दूसरे भी विद्यमान थे ऐसा तुम्हारे शास्त्र का लेख है और तुम मानते भी हो अब बतलाओ पूर्ण १६ कला तो कृष्ण में थी और वेद व्यास अवतार, धन्वंतरि अवतार तथा शुकदेव अवतार इन में तो एक भी कला नहीं थी जब ईश्वर की कला नहीं तो इन कला रहितों को ईश्वर का अवतार किस प्रकार मानते हो ? अलंविस्तरेण।

कई एक मतांध केवल नाम से ही मुक्ति होती है ऐसा कहते हैं, तब तो तप, इंद्रिय दमन, दान, दया, क्रोध, मान, माया, लोभ का त्याग करना व्यर्थ ही ठहरा। मिश्री २ कहने से मुंह मीठा हो, रोटी २ कहते भूख निवृत्त होजावे तब तो यकीन भी करलें कि भगवान् के नाम मात्र से मुक्ति हो जावेगी अन्यथा एकांत हठ वचन है। इस प्रकार तीर्थ जल के स्नान मात्र से अभ्यंतर पाप, जीव हिंसा, झूंठ, चौरी, परस्त्रीगमनादि अनेक कुकृत्य का दूर होना मानने वाले भी विचार लेवें। अच्छे कृत्य से पुण्य, बुरे कृत्य से पाप, जीव आप ही करता है तथा आप ही भोगता है और सब कर्मों को शुभ भाव द्वारा क्षय करने से जीव स्वयं मुक्त हो जन्म मरण रहित ईश्वर रूप होता है। साकार ईश्वर का स्मरण, ध्यान, पूजन इसलिये करना उचित है कि उन्होंने उच्च गति प्राप्त करने

की क्रिया उपदेश द्वारा बतलाई और अशुभ क्रिया अधोगति में लेजाने वाली बतलाई, कर्म बंध से मुक्त होने का मार्ग बतलाया।

इसलिये जब तक जीव के कर्म का आवरण है तब तक ३ साकार ध्यान उन कर्मों के आवरणों को दूर करने के लिये है। पिंडस्थ ध्यान १, पदस्थ ध्यान २, रूपस्थ ध्यान ३, इन से जब निर्मलता चेतन का मूल रूप प्रकटता है, जीव-आत्मा परमात्मा हो निज रूप को जानता है और देखता है तब वह रूपातीत चौथा ध्यान कहाता है। इसलिये जैन शास्त्र में आलंबन युक्त ध्यान कहा है, वह (१) शुभ आलंवन (२) अशुभ आलंबन। शुभ आलंवन ध्यान के लिये वीतराग, निर्विकार स्त्री शस्त्रादि वर्जित जिन प्रतिमा ध्यानावस्थित मुख्य है। अशुभ आलंवन आर्त्त ध्यान का हेतु जैसे कोक शास्त्रोक्त चौरासी आसनादि के चित्र, अन्य भी इस प्रकार के आकार का देखना। चित्त का विकार जनक दुर्गति का कारण रूप है इसलिये सम्यक्त को पुष्टिकारक जिन प्रतिमा है इसलिये स्वर्गादि देवताओं के विमान तथा भवनों में तैसे तिरछे लोक के शाश्वत पहाड़ों पर सिद्ध भगवान की प्रतिमा की स्थापना शाश्वत विद्यमान ही है ऐसा भगवती जीवाभिगम रायप्रसेणी जम्बुद्वीप पन्नत्ती आदि जिनागमो में लिखा है, उन सिद्ध मूर्त्ति विराजित स्थान को पूर्वोक्त सूत्रों में सिद्धायतन (सिद्धगृह) नाम से केवली तीर्थंकर भगवान् ने फरमाया है। जीवाभिगम सूत्र में विजय नाम के इन्द्र के पोलिये के जिन प्रतिमा के द्रव्य भाव पूजा करने के अधिकार में जिन प्रतिमा को जिनवर केवली भगवान् ने फरमाया है, इस ही प्रकार रायप्रसेणी सूत्र में सूर्याभ देव के जिन प्रतिमा के पूजा करने के अधिकार में जिन प्रतिमा को जिनवर कहा है, इत्यादि केवली तीर्थंकर के वचन से जिन प्रतिमा जिन सदृश्य सम्यक्ती जीव मानते पूजते अनादि प्रवाह से चले आये, फल की प्राप्ति भाव (इरादे) के अनुसार होती है, सिद्ध परमात्मा में गुण ठाणा नहीं इस लिये सिद्ध की थापना प्रतिमा में भी गुण ठाणा नहीं है। देवचंद्रजी न्याय चक्रवर्त्ती जैन साधु विक्रम राजा के सतरे शताब्दी से अठारेसे दश वर्ष में होगये। उन्हों ने स्वरचित चौवीसी के शांति १६ में प्रभु के स्तवन में तीर्थंकर की आज्ञानुसार जिन प्रतिमाजिन सदृश है। प्रतिमा पर सप्तनय सिद्ध कर दिखाया है और जो सप्तनय सिद्ध है वह सर्वथा जैनधर्मी सम्यक्ती को मानने योग्य है। मिथ्यात्वके ३ कृत्यहै (१) कुगुरु (२) कुदेव (३)कुधर्म्म

इनकी भक्ति, श्रद्धा, क्षायक सम्यक्तवंत, सर्वथा कदापि आदर न करे। इस रायप्रसेणी सूत्र के लेखानुसार सूर्याभदेव क्षायक सम्यक्तवंत एक भव से मोक्षगामी ऐसा पाठ प्रगट सूत्र में लिखा है वह कदापि मिथ्यात्व का कृत्य नहीं करे, उन सूर्याभदेवता ने सिद्धायतन शाश्वत में सिद्ध प्रतिमा का वंदन सतरह भेद से द्रव्य पूजन पीछे एक सो आठ नये काव्य रचित से नमोत्थुणं संपूर्ण कहकर भावस्तवन पूजन किया तब एक ने कहा कि सूर्याभदेवता अस्त्र शस्त्र अन्य सिद्धायतन में रहे, देवताओं की भी पूजा की है (उत्तर) हे महोदय ! अस्त्र शस्त्र और अन्य सिद्धायतन में रहे यक्षादि देव प्रतिमादि को केवल गंधोदक और चंदन का छींटा मात्र दिया है लेकिन वंदन वा नमन और तथा विधि द्रव्य पूजा तथा साक्षात् अर्हतकी जैसी भावस्तवना संपूर्ण नमोत्थुणं से स्तुति की और ऐसी हीं स्तुति सिद्ध प्रतिमा के सन्मुख की वह वंदन भावस्तवन किंचिन्मात्र भी पूर्वोक्त अस्त्र शस्त्र देव प्रतिमादि का नहीं किया है। इस तत्व विचार को हृदय में विचारो तब कहा, क्षायक सम्यक्ती सूर्याभदेवता नृत्य गीत देखना, सुणाना देवांगनारमण आदि अनेक आरंभ भी तो करता है ? हे महोदय ! इस कथन से तो आप सम्यक्त के ज्ञान से नितान्त अज्ञानी सिद्ध होते हो। यह नाटक देखना स्त्री भोगादि कृत्य अव्रत कहाता है, सम्यक्त का बाधक नहीं, यदि ऐसा मानोगे तो गृहस्थ श्रावक तुम्हारी समझ मुजब सब सम्यक्तहीन ठहर जायंगे क्योंकि यह स्त्री रमणादि अव्रत गृहस्थ श्रावक सेवते है। सम्यक्त अन्य है, व्रत अन्य हैं। अव्रत सेवन से मिथ्यात्व का बंध नहीं होता, अर्हत सिद्ध बिना अन्य देव का वंदन, पूजन, स्तवन तथा जिनोक्त तत्व श्रद्धान रहित गुरु की उपासना केवलीकथित धर्म बिना अन्यधर्म की श्रद्धारुचि इन तीन कृत्योंसे मिथ्यात्व का बंध होता है जो अनंत काल जन्म मरण कराता है। अव्रत सेवने वाले तद्भव निर्वाण अनंतजीवों ने पाया यथा चक्रवर्त्ती भरतादिक, इस सूर्याभदेवता की भोलावन जिन प्रतिमा का वंदन द्रव्य भाव पूजन सम्यक्त की करणी में ज्ञाता सूत्र में द्रौपदी को दी है। जब सूर्याभ सम्यक्त निर्मल करने रूप जिन प्रतिमा की पूजा करी इस सूत्र लेख से द्रौपदी सम्यक्त धारिणी सिद्ध होगई फिर नारद को अव्रती अपच्चखाणी जान कर न उठी, न वंदन किया, इस सूत्र के लेख से सम्यक्त धारणी और श्रावक धर्म के धारनेवाली सिद्ध होगई और जो पांच पति धारनेवाली द्रौपदी को श्रावकव्रतधारणकर्त्ता सती नहीं मानते उनसे मेरा सवाल है कि १२ स्त्रीवाला महाशतक श्रावक जिसका कथन उपासक दशा सूत्र में लिखा है, इसको स्वदारा

संतोष का चौथा व्रत मानते हो वा नहीं? वा आजकल श्रावक पद धर्म का अभि-मान धरानेवाले पांच २ सात २ विवाह करते हैं इन को क्या मानते हो? आत्मा धर्म तो स्त्रीपुरुषका समतुल्यहै फिर अधिकता तो यह है कि पापणीस्त्री छठे नरकसे आगे नहीं जाती। पुरुष सातवें नरक पर्यंत जाते है। पूर्वबद्ध मंद रस के नियाणे से पांच पति से पंच समक्ष व्याह किया लेकिन बारे के दिन का पति तो एक ही इच्छती थी, अन्य पुरुष का त्याग था उस द्रौपदी को कुसती कहने वाले यथा राजा पद्मनाभ तथा कीचक ने यहां तो प्राण घात दंड पाया पर भव में नरक पाया आखिर को यह गति होगी। नव नियाणा का लेख दशाश्रुतस्कंधसूत्र में देखो, नियाणा जन्मभर जीव के रहता है, द्रौपदी का नियाणा केवल ज्ञान और मुक्ति का बाधक था लेकिन सम्यक्त देश व्रत सर्व व्रत का बाधक नहीं था।

कईएक जैना भास श्रावकपना पांचमागुणस्थानक अपनेमें मानतेहैं। कुगुरुओं के कहने मुजब वे अपने आचरण को प्रथम चित्त में विचार कर पीछे अपने में पांचमा गुण ठाना मानें, मिथ्यात्वी देवी, देवता, भूत, प्रेत यक्षादिक का वंदन नमन पूजा करते फिरते है। सूत्रों की आज्ञानुसार मिथ्यात्वी देवी देवता के मानने वाले में चौथा गुण स्थानक सम्यक्त का लेश मात्र भी अंश नहीं, जब सम्यक्त चौथा गुणठाणा नहीं तो पांचमा गुणठाणा कदापि उस में सिद्ध नहीं होता, नास्तिमूलं कुतोशाखा जिस की जड़ ही नहीं तो शाखा प्रशाखा उस वृक्ष की कैसे हो सकती है? यदि वे कहें कि हम तो संसार खाते मिथ्यात्वी देवी देवताओं को मानते पूजते हैं, धर्म खाते नहीं उत्तर—हे महोदय! भगवती सूत्र में तुंगिया नगरी जो अब सूबे विहार नाम से प्रसिद्ध है, उन श्रावकों के वर्णन में लिखा हैं कि यक्ष, भूत, प्रेतादि अन्य मिथ्यात्वी देवी देवताओं का सहाय वे श्रावक नहीं चाहते थे, क्या वे संसारी नहीं थे? इस भगवती सूत्र के लेख से सर्वत्र जिन धर्मी श्रावक अन्य देवी देवता मिथ्यात्वियों को कदापि वंदन, नमन, पूजनादि नहीं करते थे। प्रायः इस समय मिथ्यात्वी जन कल्पित पर्वों को मानने वाले, बासी विदलादि अभक्ष के भक्षक, मिथ्यात्वी देवी देवता के भक्त जनों के सम्यक्त सूत्रानुसार सिद्ध नहीं, सम्यक्त बिना न श्रावकव्रत, न साधुव्रत प्राप्त हो सकता है। संसारी खाते जो मिथ्यात्व का कृत्य करे वा आपारंभ करे उस का फल करने वाले की आत्मा भोगेगी वा दूसरा भोगेगा?

संसारी खाता मुंह के कहने मात्र से मिथ्यात्व का बंध छूट जाता होगा, इस समझ को धन्यवाद है। जिन कुमतियों ने तुमको मिथ्यात्व देवी देवताओं को मानते पूंजते को संसारी खाते करना बतलाया वह एक अपेक्षा सत्य प्रतीति होता है, संसारी खाते की वृद्धि होगी, संसार में परिभ्रमण करना पड़ेगा इसलिये संसार खाते यथार्थ नाम सिद्ध है।

अब जिन प्रतिमा में प्रथम ६ नय सिद्धता दरशाते हैं—समवसरण में पूर्व दिशि के द्वार सन्मुख श्री तीर्थंकर सिंहासन पर आप विराजते है, दक्षिण पश्चिम तथा उत्तर के द्वार सन्मुख श्री अरिहंतजी की प्रतिमा (बिंब) विराजता है वह प्रतिमा रूप थापना जिन है, वह उपकारी है, उस प्रतिमा का आलंबन पाय करके समवसरण में अनेक जीव समकित धारी हुये, व्रत के धारणे वाले पूर्व दिशि के द्वार बैठते है। अन्य ३ दिशि जिन प्रतिमा से जीव समकित का लाभ लेते हैं इसलिये ये धन्यता थापना निक्षेपे का उपकार है, थापना का विशेष उपकारीपणा तथा सत्यपना कहते है। अरिहंत तथा सिद्ध परमेश्वर अपने आत्मा का निमित्त कारण है और जिन प्रतिमा वह भी अपने तत्व साधन का निमित्त कारण है इसलिये ठाणांग सूत्र के दसमें ठाणे ठवणासच्चे स्थापना को सत्य कहा, जिन प्रतिमा में अरिहंत सिद्धपना ६ नय से है, यदि कोई कहे कि अरिहंत हुये सिद्ध हुये उन की थापना है तो ७ नय छोड़ ६ नय कैसे कहते हो ? (उत्तर) मूल तो थापना में ३ नय है, नाम स्थापना द्रव्य तीन निक्षेप, नैगम नयवर्त्ती ऐसा है। यहां नामादि एक २ निक्षेपे का चार २ भेद होता है (उक्तं च भाष्ये) नामादि प्रत्येकं चतुरूपमिति ॥

नाम स्थापना में है उस थापना का नाम निक्षेपा है। स्थापना ग्रहण कारण होता है, उस स्थापना का स्थापना निक्षेपा है, समुदायता अनुपयोगता उस स्थापना का द्रव्य निक्षेपा है, आगारोभिप्पाओ (आकार से अभिप्राय होता है) इस धर्म का कारणिक होना वह थापना का भाव निक्षेपा है इस तरह थापना चार निक्षेपे युक्त है अथवा नत्थिनएहिं विहुणं सुत्तोअत्थोयजिणमएकिंचि अर्थात् नहीं है नय बिना सूत्र वा अर्थ जिन-मत में कुछ भी, सर्व बचन नय (न्याय) युक्त है।

अरिहंत सिद्ध भगवान् की थापना है उसमें नय कहते हैं:—

(१) प्रतिमाके देखने से अरिहंत सिद्ध का संकल्प चित्त में होता है

अथवा स्त्री शस्त्रादि राग द्वेषादि चिन्ह का असंगादि तदाकारता रूप अंश यह जिनकी स्थापना में है। नैगम नय अंश को ग्रहण कर वस्तु सिद्धि कहता है इस लिये पूर्वोक्त अंश रूप थापना में नैगम नय सिद्ध है।

(२) अरिहंत तथा सिद्ध के सर्व गुण के संग्रह की बुद्धि को धारण कर के प्रतिमा की थापना करी है इसलिये यह संग्रह नय अरिहंत सिद्ध की थापना में विद्यमान है।

(३) अरिहंत के आकार को वंदन नमन स्तवनादि सर्व व्यवहार श्री अरिहंत का होता है उसका कारणपणा इस थापना में है इसलिये व्यवहार नय थापना में है।

(४) इस जिन प्रतिमा रूप थापना को देख सर्व भव्य जीवों के बुद्धि का विकल्प उत्पन्न होता है कि ये श्री अरिहंतजी है इस विकल्प से थापना करी है इसलिये ऋजु सूत्र नय स्थापना में है।

(५) अरिहंत सिद्ध ऐसा शब्द इदंप्रकृतिप्रत्ययसिद्धम् (यह स्वभाव प्रत्यय सिद्धपणा) इस स्थापना में प्रवर्त्तता है इसलिये शब्द नय थापना में है।

(६) अरिहंत का पर्यायवाचक वीतराग सर्वज्ञ तीर्थंकर तारक जिन पारंगत त्रिकालवित् इत्यादि सर्व पर्याय की प्रवृत्ति भी थापना में है इसलिये समभिरूढ नय थापना में है।

लेकिन केवल ज्ञान, केवल दर्शनादि गुण तथा उपदेश देना यह धर्म थापना में नहीं है, इसलिये एवं भूत नय का धर्म थापना में नहीं इसलिये थापना निष्पन्नता अरिहंत सिद्ध रूप ६ नय से है।

इसलिये कार्यपण से अरिहंत विद्यमान में ६ नय है विशेष आवश्यक में आदि के तीन नय थापना में कहा है। यहां उपचार भावना से ६ नय कहा, समभिरूढ नय वचन पर्यायवर्त्ती है वह लक्षण थापना में प्राप्त होता है इसलिये ६ नय कहा है।

जिन प्रतिमा रूप थापना समकिती देशविरति और सर्वविरति को मोक्ष साधन का निमित्त कारण है वह निमित्त कारण ७ नय से है, कारण का धर्म

कर्त्ता के वश है वह निमित्त कारण सात नय से दिखाते हैं:—

(१) संसारानुयायी जीव को जिन प्रतिमा को देखने से अरिहंत का स्मरण होता है अथवा जिन वंदन कूं जीव की सन्मुखता होती है इसलिये सन्मुखता का निमित्त वह नैगमनय निमित्त कारणपणा है।

(२) जिन प्रतिमा के देखने से सर्व गुण का संग्रह होता है। साधकता की चेतनादि सर्व का संग्रह उस तत्त्वता की अद्भुतता के सन्मुख होता है, वह संग्रह नय निमित्त कारण जिन प्रतिमा है।

(३) वंदन नमनादिक साधक व्यवहार का निमित्त वह व्यवहार नय निमित्त कारण जिन प्रतिमा है।

(४) तत्व ईहा रूप उपयोग स्मरणे का निमित्त वह ऋजु सूत्र नय निमित्त कारण जिन प्रतिमा है।

(५) संपूर्ण अरिहंतपणे का उपयोग से जो उपादान इस निमित्त से तत्त्व साधन में परिणमा वह शब्द नय थापना का निमित्त है, समकिती आदि जीवों को इसलिये शब्द नय निमित्त कारण जिन प्रतिमा है।

(६) अनेक तरह से चेतन के वीर्य का परिणाम सर्व साधनता के सन्मुख हुई वह समभिरूढ नय निमित्त कारण जिन प्रतिमा है।

(७) इस जिन थापना का कारण पाय कर तत्त्व की रुचि, तत्त्व में रमणता करके शुद्ध शुक्ल ध्यान में परिणमे वह संपूर्ण निमित्त कारणता पा करके उपादान की पूर्ण कारणता उत्पन्न हुई वह एवं भूत नय निमित्त कारण जिन प्रतिमा है।

निमित्त कारण का यह धर्म है जो उपादान को कारणपणे प्राप्त करे, और उपादान कारण वह कार्य पणे नीपजे यह मर्यादा है (दृष्टांत) घड़े का उपादान कारण शुद्ध मिट्टी, उसको चक्र, कुंभार, जल, डोरी, लकड़ी ये निमित्त कारण, घड़ा बनने रूप कार्यपणे परणमाता है इस प्रकार सात नय से सिद्ध निमित्त कारण रूप जिन प्रतिमा भव्य जीव रूप उपादान कारण को शुक्ल ध्यान ध्याते निर्वाणादि कार्य निपजाता है। इसलिये जिन प्रतिमा मोक्ष का निमित्त कारण है उसमें शय्यं भव भट्ट को शब्द नय पर्यंत निमित्त कारण जिन प्रतिमा हुई

तब वे दीक्षा लेकर १४ पूर्वधर श्रुत केवली शय्यं भव सूरि वीर प्रभु के चौथे पट्टधर हुये जिन का लेख दशवैकालिक सूत्र की चूलिका की ४ गाथा में है।

अन्य पुण्य रुचि जीव को जिन प्रतिमा व्यवहार नय निमित्त कारण पर्यंत निमित्त कारण होय तथा मार्गानुसारी को समकित की आठदृष्टि जो योगदृष्टि समुच्चय में कही है उसमें से आदि की ४ दृष्टि वाले को ऋजु सूत्र नय पर्यन्त जिन प्रतिमा निमित्त कारण होता है और पूर्ण पुण्याढ्य को यह जिन प्रतिमा संपूर्ण एवं भूत सातमी नय पर्यंत कारण रूप हुई दिखती है इस भावना से यह सिद्धता हुई जिन प्रतिमा में संपूर्ण सात नय रूप निमित्त कारणता है पीछे तो कार्य का कर्त्ता जहां पर्यंत निपजावे उतना नीपजे।

थापना श्री अरिहंत पद की मूल तो द्रव्य और भाव ये दोय निक्षेपवंत हैं लेकिन निमित्त कारण का चार निक्षेपा सात नय संयुक्त है सो कहा है निमित्त-स्यापि सप्तप्रकारत्वनयप्रकारेण, निमित्तस्य द्वैविधं, द्रव्यभावात्, तथोपादनस्यापि सप्तप्रकारत्वं नयोपदेशात् नो आभिहाणमणयं, इति वचनात्।

इसलिए निमित्त कारण से जिन प्रतिमा और जिनवर अरिहंत दोनों तुल्य हैं क्योंकि ये दोनों साधक जीव को तो निमित्त कारण है लेकिन उपादान नहीं, सर्व में निमित्तता है ऐसी सिद्धांत की वाणी है। अरिहंत को वंदन करने का फल तथा अरिहंत*की प्रतिमा वंदन का फल सूत्रों में एक सदृश लिखा है।

नाम १, स्थापना २ और द्रव्य ३ ये तीन निक्षेपाभाव के कारण हैं। उक्तंच भाष्ये—अहवा नाम ठवणा, दव्वाइ भाव मंगलगाए पाएण भाव मंगल, परिणाम निमित्त भावाओ ॥१॥ ये तीन निक्षेपा भाव के साधक हैं। इन तीन विना भाव निक्षेपा होय नहीं, नाम तथा थापना इन दो निक्षेपों को भाष्य में उपकारी कहा है, द्रव्य निक्षेपा पिंडरूप है इसलिये ग्रहण करीजे नहीं और भाव निक्षेपा अरूपी है इसलिए नाम थापना निक्षेपे विना ग्रहण तथा सेवना होय नहीं इसलिये नाम, थापना ये दो उपकारी हैं (उक्तंच) वत्थुसरूवंनामं

---

* देखो हमारा संग्रह किया सिद्ध मूर्त्ति का दूसरा भाग छपा हुआ ३२ सूत्र में का सूत्र पाठ, जिनेश्वर साक्षात् का वंदन फल तथा जिन प्रतिमा वंदन का फल एक तुल्य।

तप्पच्चयहेउओसिधम्मव्व, वत्थुनाणाविहाणा, होज्जाभावोविवज्जासो ॥ वत्थुस्सलक्खणंसं, ववहारोविरोहसिद्धाओ, अभिहाणाहिणाओ, बुद्धिसद्दो-अकिरियाय ॥ इतिवाक्यात् नाम्नः प्रधानत्वम् ।

गाथा—आगारो भिप्पाओ, बुद्धिकिरियाफलंचपाएणं, जहविसइठवणाए,नसहानामेणदव्विदो ॥१॥ आगारोच्चियमई, सद्दवत्थुकिरियाभिहाणाइ, आगारमयंसव्वं, जमणागारातयानत्थि ॥२॥ इत्यादि ।

इसलिये नाम और थापना ये दोय निक्षेपा उपकारी है। मोक्ष साधने में संवर निर्जरा करने को तो वंदन करने वाले का जो भाव है सो ग्रहण करना, यदि अरिहंत का भाव निक्षेपा ग्रहण करना कोई कहे तो सर्वथा ग्रहण नहीं होता, अरिहंत का भाव निक्षेपा श्री अरिहंत के अभ्यंतर है यदि जो परे जीव को अरिहंत गत भाव निक्षेपा तारे तब तो कोई भी जीव को संसार में रहना पड़े नहीं अर्थात् सर्व जीव की मुक्ति होजावे, ऐसा तो कभी हुआ नहीं, होता नहीं और होगा नहीं, लेकिन अपना भाव अरिहंतावलंबनी होय, तभी मोक्ष मार्ग की प्राप्ति हो, इसलिये प्रभु की थापना तथा नाम के निमित्त से साधक को भाव स्मरण हो सुधरे, इसलिये थापना नाम दोय निक्षेपे ही उपकारी है फिर समवसरण में विराजमान श्री अरिहंत उनका नाम तथा आकार सर्व जीव को उपकारी होता है। छद्मस्थ को तो वही ग्राह्य है। अवलंबन दोनों का ही छद्मस्थ कर सकता है। केवलज्ञानी का भाव तो केवलज्ञान विना ग्रहण होता नहीं। निमित्त आलंबी रूपी ग्राहक को श्री जिन प्रतिमा पुष्ट निमित्त है। (देखो नोट).

नोट.—न० १. दी जैन स्टूपा ऐनटीकीटीस ऑफ मथुरा बाई विनसेन्ट एसमिथ (अर्थात्) लन्दन में अंग्रेजी में मथुरा का छपा शिला लेख जैन मंदिर का उसमें एक शिला लेख का चित्र (फोटो) सबसे प्राचीन है। पार्श्वनाथ स्वामी के शिष्य प्रभु के विद्यमान समय कई एक जैनाचार्यों ने मिलकर जिन मंदिर की प्रतिष्ठा की थी उन का सर्व वृत्तांत उक्त अंग्रेजी मे छपा सेठ श्री चांदमलजी ढड्ढा, C.I.E., बीकानेर के पास पुस्तक हमने स्वय देखा।

न० २. बाई विनसेन्ट एसमिथ, लंदन में छपा इस में लिखा है कि अकबर बादशाह दृढ़ जिनधर्मी होगया था।

इति (सत्यासत्यनिर्णय) जैनदिग्विजय पताका ग्रन्थ की भूमिका संपूर्ण।

यदि कोई प्रमादवश इस ग्रंथ में लेख दोष हुआ हो तो सुधार के पढ़ें और मुझे क्षमा करें।

आप सर्व का कृपाभिलाषी—मैं उपाध्याय श्रीरामलाल गणिः
परोपकारार्थ इस ग्रन्थ का संग्रह कर पक्षपात
रहित भव्य जीवों के अर्थ इस को
अर्पण करता हूं। श्रीरस्तु।
कल्याणमस्तु।

॥ श्रीः ॥

विज्ञापन

विदित हो कि मैंने मेरे गुरु महाराज उपाध्याय श्री रामलालजी गणिः से बालपन से विद्याभ्यास किया है जिसमें विशेषतया आयुर्वेद पढ़ा हूं। रोग परीक्षा व इलाज गुरु महाराज के अनुभूत शीघ्र फलदायक करता हूं। ज्वर, सर्वतरह के अतिसार, संग्रहिणी, वमन, आम्लपित्त, सोथमुख आदि से रक्त गिरना, पांडु, आमवात, कुष्ट, (गठिया) वायु, फिरंग, गर्मी, सुजाक, कास, श्वास, पसली का दरद, सन्निपात, शूल, अजीर्ण, हैजा, प्लेग, पागलपना, मृगी, मूर्च्छा इत्यादि रोगों का वनस्पति वर्ग की दवा व रस रसायण दोनों से रामबाण इलाज है।

घर बुलाने से दिन का १) रात का २) तथा दवा के दाम। सामान्य रोगी के ॥) दीर्घ रोगी के १) रुपया हमेशा का ये नियम तीन वर्ष के लिये है। गरीब का इलाज नुस्खा लिख देकर मुफ्त करता हूं।

द० पं० प्रेमचन्द्र यतिः,
रांघड़ी चौक, बीकानेर,
(मारवाड़).

देवाधिदेवस्वरूप

श्री सर्वज्ञजिनाय नमः ॥ श्री धर्मशीलसद्गुरुभ्यो नमः ॥

सर्व तत्ववेत्ता पक्षपात विवर्जित पंडितों से नम्रता पूर्वक विनती है कि जो मेरे लिखने में जिन-धर्म से कुछ विरुद्धता हुई हो वह स्थान यथार्थ लिख कर पढ़ें, अनुग्रह होगा। इस ग्रंथ के लिखने का मुख्य प्रयोजन तो यह है कि इस हुंडा अवसर्प्पणी काल में बहुत से मत लोगों ने स्व कपोल कल्पित प्रकट कर दिये हैं। अंगरेजों की विद्या पढ़ने से तथा काजी, समाजियों के प्रसंग से जीवों के चित्त में अनेक कुविकल्प की तरंगें उठती हैं इसलिये संसार के जीवों को यथार्थ सुदेव, सुगुरु और सुधर्म का ज्ञान हो तथा कुदेव कुगुरु और कुधर्मके स्वरूप का वेत्तापना हो, संसारके सर्वधर्मों से प्रथम धर्म जैन मोक्षदाताहै सो इस में दर्शायाहै। फिर इस ग्रंथके पढ़नेसे तत्वज्ञानकी प्राप्ति होगी। तत्व के वेत्ता को अवश्य निकट मुक्ति है। यह निर्विवाद पक्ष है। किंबहुना सुज्ञेषु।

जैनधर्म में १२ गुण युक्त को अर्हंत परमेश्वर तरणतारण माना है

उन १२ गुणों की व्याख्या—

श्लोक।

अशोकवृक्षःसुरपुष्पवृष्टिः दिव्यध्वनिश्चामरमासनंच।
भामंडलंदुंदुभिरातपत्रं सत्प्रातिहार्याणिजिनेश्वराणाम् ॥१॥

(अर्थ) अर्हत परमेश्वर वर्त्तमान जिनराज के देहमान से बारह गुणा ऊंचा स्वर्ण रत्नमयी अशोक वृक्ष की छाया सर्वत्र सर्वदा संग रहती है (१) देवता आकाश से जल थल के पुष्पों की वर्षा करते हैं (२) कम से कम एक क्रोड देवता जय २ ध्वनि करते संग रहते हैं (३) चमरों की जोड़ियों वींझती रहती हैं (४) स्फटिक रत्न का सिंहासन चंक्रमण समय आकाश में चलता है, विराजते हैं। वहां नीचे अवतरण होता है (५) भगवान् का तेज मनुष्य देख नहीं सकते इसलिये मस्तक के पीछे कोटि दिवाकर के तेज को विडंव्यमान भामंडल शोभा देताहै (६) सर्वदा आकाशमें देवगण प्रभु के सन्मुख देव दुंदुभि बाजित्र बजाते रहते हैं (७) मस्तक पर तीन छत्राति-छत्र सर्वदा रहता है (८) इस प्रकार आठ महा प्रातिहार्य तथा चार मूल अतिशय (१) ज्ञानातिशय (२) वचनातिशय (३) अपाय अपगमातिशय (४) पूजातिशय एवं १२ गुण युक्त अर्हत परमेश्वर वीतराग होते हैं।

ज्ञानातिशय से केवल ज्ञान केवल दर्शन से भूत, भविष्य, वर्त्तमान काल में जो सामान्य विशेषात्मक वस्तु है उसको और (१) उत्पन्न होना (२) नाश होना (३) ध्रुव रहना युक्तसत्। तीनों काल संबंधी सत् वस्तु का जानना उसको ज्ञनातिशय कहते है। दूसरा भगवान् का वचनातिशय है उसके ३५ भेद हैं जैसे (१) संस्कृतादि लक्षण युक्त वचन (२) शब्दमें उच्चपना (३)ग्राम वास्तव्य मनुष्य जैसे भगवान्का वचन नहीं (४) मेघ गर्जारव शब्दवत् गंभीर वचन (५) सर्ववाजित्रों के साथ मिलता हुआ वचन (६) सरलता संयुक्त वचन (७) मालव कोश की आदि ग्राम राग कर युक्त वचन (ये सात अतिशय तो शब्द की अपेक्षा के आश्रय होते हैं बाकी २८ अतिशय अर्थ आश्रय के होते हैं) (८)महाअर्थ युक्त वचन (९) पूर्वापर विरोध रहित वचन

(१०) अभिमत सिद्धांत वचन (११) श्रोताजन को संशय नहीं होय ऐसा वचन (१२) जिन के कथन में कोई दूषण नहीं न श्रोता को शंका हो न भगवान् उसका दूसरी वेर प्रत्युत्तर देवें (१३) हृदय में ग्रहण करने योग्य वचन (१४) परस्परमें वचन का सापेक्षपना (१५) प्रस्तावके उचित वचन (१६) कहीं वस्तु के स्वरूप अनुसारी वचन (१७) सुसंबंध होकर पसरने रूप वचन (१८) स्वश्लाघा और परनिंदा वर्जित वचन (१९) प्रतिपाद्य वस्तु की भूमिका-नुसारी बचन (२०) अतिस्निग्ध और मधुर वचन (२१) कथन किये गुण की योग्यता से प्रशंसा रूप वचन (२२) पराया मर्म उघाड़ने से रहित बचन (२३) अर्थ का तुच्छपना रहित वचन (२४) धर्म अर्थ कर संयुक्त वचन (२५) कारक काल लिंगादि कर संयुक्त और इन के विपर्यय रहित वचन (२६) वक्ता के मन की भ्रांति विक्षेपादि दोष रहित वचन (२७) श्रोताओं को उत्पन्न करा हैं भिन्न कौतुहलपना ऐसे वचन (२८) अद्भुतपणे के वचन (२९) अतिविलंब रहित वचन (३०) वर्णन करने योग्य वस्तु जातीय स्वरूप आश्रय वचन (३१) बचनान्तर की अपेक्षा से स्थापित है विशेषता ऐसे वचन (३२) साहस कर संयुक्त वचन (३३) वर्णादिकों के विच्छिन्नपणे युक्त वचन (३४) कहे हुयें अर्थ की सिद्धि यावत् नहीं होय तहां तक अव्यवच्छिन्न प्रमेयपणे रूप वचन (३५) थकावट रहित बचन ये वचनातिशय उपदेश देते अर्हत परमेश्वर के होते हैं। तीसरा अपायअपगमअतिशय तैसे चौथा पूजातिशय इन दोनों से विस्तार रूप ३४ अतिशय होते हैं।

तीर्थंकर भगवान् के देह का रूप और सुगंध सर्वोत्कृष्ट रोग वर्जित पसीना और मैल कर रहित होता है (१) श्वास निश्वास थल कमल के जैसा सुगंधीवाला होता है (२) रुधिर और मांस गो दुग्ध की तरह उज्वल श्वेत होता है (३) आहार और निहार की विधि चर्मचक्षुवाले को दिखाई नहींदेता (४) ये चार अतिशय तो जन्मसे होतेहैं, केवल ज्ञान उत्पन्नहुये अनंतर एक योजन प्रमाण समवसरण की पृथ्वी, लेकिन उस में देव देवांगना मनुष्य मनुष्यणी तिर्यंचों की कोटाकोटि समाय शक्ति है, भीड़ नहीं होती है। (१) प्रभु की वाणी अर्द्ध मागधी लेकिन देव मनुष्य तिर्यंच को अपनी २ भाषा में परणमती है, और १ योजन पर्यंत सुनाई देती है (२) प्रभामंडल मस्तक

के पीछे सूर्य की मानों विडंबना करता है, अपनी शोभा से ऐसा भामंडल शोभता है (३) साढे पचवीस योजन क्षेत्र में चारों दिशि में उपद्रव ज्वरादि रोगोंकी निवृत्ति होतीहै (४) परस्पर विरोध नहींहोता (५) सात धान्यादि उपद्रवकारी मुषकादि नहीं होते (६) अतिवृष्टि हानिकारक नहींहोती (७) अनावृष्टि वर्षातका अभाव नहीं होता (८) दुर्भिक्ष (काल) नहीं गिरे (९) स्वचक्र परचक्र का भय नहीं होय पुनः ग्यारे अतिशय ज्ञानावरणीय आदि चार घनघाती कर्मों के क्षय होने से उत्पन्न होते हैं।

(१) आकाश में धर्म प्रकाशक चक्र होता है (२) आकाश गत चामर (३) आकाश में पाद पीठ युक्त स्फटिकमय सिंहासन होता है (४) आकाश में तीन छत्र (५) आकाश में रत्नमय ध्वज (६) जब भगवान् चलते हैं तब पग के नीचे सुवर्ण नव कमल देव रचते हैं (७) समवसरण में रत्न, सुवर्ण और रूपेमयी तीन गढ (कोट) मनोहर देव रचते हैं (८) समवसरण में चारों दिशि में प्रभु के चार मुख दीखते हैं (९) स्वर्ण रत्नमय अशोक वृक्ष की छाया सर्वदा प्रभु पर देव करते हैं (१०) कांटे अधोमुख होजाते हैं (११) वृक्ष ऐसे नम जाते हैं मानो नमस्कार करते हैं (१२) उच्च नाद से दुंदुभि भुवन व्यापक निनाद करती है (१३) पवन सुखदाई चलती है (१४) पक्षी प्रदक्षिणा देते उड़ते हैं (१५) सुगंध जल का छिड़काव होता है (१६) गोडे प्रमाण जल थल के उत्पन्न पंच वर्ण सरस सुगन्धित फूलों की वर्षा होती है (१७) भगवान् के डाढी मूंछ के बाल, नख शोभनीक अवस्थित रहते हैं (१८) चार निकाय के देवता कम से कम एक कोटि प्रभु की सेवा में सर्वदा रहते हैं (१९) षट् ऋतु अनुकूल शुभ स्पर्श, रस, गंध, रूप और शब्द ये पांच बुरे तो लुप्त होजाते हैं और अच्छे प्रकट होजाते हैं। ये उगणीस अतिशय देवता करते हैं। वाचनांतर मतान्तर से कोई २ अतिशय अन्य प्रकार से भी मानते हैं एवं

१. तत्वार्थ सूत्र के टीकाकार समंत भद्राचार्य ने लिखा है कि हे जगदीश्वर! देव रचित जो १९ अतिशयादि बाह्य विभूति इंद्र जाल विद्यावाला भी दिखा सक्ता है लेकिन जो तुझ में १८ दूषण के क्षय होने से आत्मगुण अनंत प्रकटे है वे—

४ मूल अतिशय और ८ प्रातिहार्य एवं १२ गुणों से विराजमान अर्हत परमेश्वर होते हैं।

अठारह दूषण रहित होते हैं उन के नाम—

यतः—अन्तरायोदानलाभोवीर्यभोगोपभोगगाः।
हासोरत्यरतिर्भीतिर्जुगुप्साशोकएवच ॥ १ ॥
कामोमिथ्यात्वमज्ञानंनिद्राचाविरतिस्तथा।
रागोद्वेषश्चनोदोषास्तेषामष्टादशाप्यमी ॥ २ ॥

(१) दान देने में अंतराय (२) लाभगत अंतराय (३) वीर्य-गत अंतराय (४) जो एक वेर भोगने में आवे सो भोग पुष्प मालादि तद्गत अंतराय सो भोगांतराय (५) वेर वेर भोगने में आवे घर आभूषणादि तद्गत अंतराय सो उपभोगांतराय (६) हास्य (हंसना) (७) रति (पदार्थों के ऊपर प्रीति) (८) अरति (पदार्थोंके न मिलने से) बेचैनी (९) भय सात प्रकार का (१०) जुगुप्सा (मलीन वस्तु को देख नाक चढाना) (११) शोक (चित्त का वैधूर्यपना) विकलपना (१२) काम (मन्मथ) स्त्री, पुरुष, नपुंसक इन तीनों का भेद विकार (१३) मिथ्यात्व (दर्शनमोह) (१४) अज्ञान (मूर्खपना) (१५) निद्रा (शयन करना) (१६) अविरति (पांचों इंद्रियों को वश में न रखना) सब वस्तुओं का त्याग (१७) राग (पूर्व सुख उसे साधने में लंपटता) (१८) द्वेष (पूर्व दुःखों का स्मरण और पूर्व दुःख में वा उसके साधन विषय (क्रोध) ये अठारह दूषण जिनमें नहीं सो अर्हत भगवंत परमेश्वर है। इन में से एक भी दूषण जिसमें हो वह कदापि भगवान् परमेश्वर नहीं होसकता।

इन १८ दूषणोंका विस्तार अर्थ लिखते हैं—प्रश्न—दानान्तराय

तो तेरे विना अन्य किसी भी देव में नहीं है। इसलिये तू परमेश्वर तरणतारण है। भक्तामर स्तोत्रकार कहता है "नान्यं सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता" अर्थात्—तेरी तुलना करने वाला अन्य पुत्र माता ने नहीं जना।

१. दानांतराय के नष्टता से निज ज्ञानादि अनन्त गुण का दान देते है।

के नष्ट होने से क्या परमेश्वर दान देता है, लोभान्तराय के नष्ट होने से क्या लाभ परमेश्वर को होता है, वीर्यांतराय के नष्ट होने से क्या परमेश्वर शक्ति दिखलाता है, भोगांतराय के नष्ट होने से क्या परमेश्वर भोग करता है, उपभोगांतराय के नष्ट होने से क्या परमेश्वर उपभोग करता है। उत्तर—हे भव्य! ये पांच अन्तराय (विघ्न) जिस के लग रहे हों वह परमेश्वर कैसे हो सकता है। पूर्वोक्त पांच विघ्न के क्षय होने से भगवंत में पूर्ण पांच शक्तियें प्रकट हुई होती हैं, जैसे नेत्रों के पटल दूर होने से निर्मल चक्षु में देखने की शक्ति प्रकट होती है, चाहे किसी वस्तु को देखे या न देखे, समर्थ वह कहाता है कि मार सके लेकिन मारे नहीं, किसी को मारदे वह कदापि ज्ञानियों की समझ से समर्थ नहीं कहलाता। ऐसे इन पांच अन्तराय के नष्ट होने की शक्ति स्वरूप समझना, पांच शक्ति से रहित जो होगा वह परमेश्वर नहीं हो सकता (६) छठ्ठा दूषण हास्य है, हासी अपूर्व वस्तु के देखने से वा सुनने से आती है वा अपूर्व आश्चर्य के अनुभव के स्मरण से आती है, ये हास्य के निमित्त हैं, हास्य मोहकर्म का प्रकृति रूप उपादान कारण है, ये दोनों ही कारण अर्हत परमेश्वर में नहीं हैं, प्रथम निमित्त कारण का संभव कैसे होय, अर्हत भगवान् सर्वज्ञ सर्वदर्शी हैं। उन के ज्ञान में कोई अपूर्व ऐसी वस्तु नहीं जो उसे देखे सुने वा अनुभवे, जिस से आश्चर्य हो और मोहकर्म तो अर्हत ने सर्वथा क्षय करदिया, इसलिये उपादानकारण कैसे होसके, इसलिये अर्हत में हास्य रूप दूषण नहीं होता, हसनस्वभाववाला अवश्य असर्वज्ञ, असर्वदर्शी और मोह से युक्त होता है वह परमेश्वर कैसे हो सकता है (७) सातमा दूषण रति, जिस की प्रीति पदार्थों के ऊपर होगी वह अवश्य धन, स्त्री, शब्द, रूप, रस, गंध, स्पर्श, सुन्दर देख प्रीतिमान् होगा, प्रीतिमान् अवश्य उस पदार्थ की लालसा वाला होगा तो अवश्य उस पदार्थ के न मिलने से

२. लाभांतराय के नष्ट से निज स्वरूप का लाभ लेते है। ३. वीर्यांतराय के नष्ट होने से निज अनन्त ज्ञान में अनंत वीर्य फेरते हैं। ४. भोगान्तराय के नष्ट से ज्ञानादि अनन्त गुण का पर्याय उस का समय २ उपभोग तथा भोग करते हैं।

पृष्ठ.

वीतराग

अनुक्रमणिका।

दुःखी होगा वह भगवान् परमेश्वर कदापि नहीं। यह रति दूषण अर्हत में नहीं (८) आठमा दूषण अरति, जिस की पदार्थ पर अप्रीति होगी वह तो अप्रीति रूप दुःख से दुःखित है वह परमेश्वर नहीं, अर्हत परमेश्वर में अरति दूषण नहीं (९) नवमा दूषण भय, जिस से अपना ही भय दूर नहीं हुआ वह परमेश्वर कैसे हो सकता है। अर्हत सर्वदा निर्भय होते हैं (१०) दशवां दूषण जुगुप्सा है, मलीन वस्तु को देख के घृणा करना, परमेश्वर के ज्ञान में सब वस्तु का भान होता है, जुगुप्सा दुःख का कारण है, जो करता है वह परमेश्वर नहीं, अर्हत जुगुप्सा रहित है (११) ग्यारमा दूषण शोक है, शोक करने वाला परमेश्वर नहीं, अर्हत शोक रहित होते हैं (१२) बारमा दूषण काम है, जो स्त्रियों के साथ विषय सेवता है, स्त्री रखने वाला अवश्य कामी है ऐसे स्त्री भोगी को कौन बुद्धिमान् परमेश्वर कह सकता है, अर्हत परमेश्वर ने काम को जय किया है (१३) तेरवां दूषण मिथ्यात्व है, दर्शन मोह से लिप्त वह परमेश्वर नहीं, अर्हत भगवंत ने शुद्ध दर्शन प्राप्त मोह का क्षय किया है (१४) चौदवां दूषण अज्ञान है, जिस को मूढता है वह परमेश्वर नहीं, अर्हत भगवंत केवल ज्ञान कर विराजमान होते हैं (१५) पंदरवां दूषण निद्रा है, निद्रा प्राप्त को ज्ञान भान नहीं रहता, वह निद्रा लेने वाला परमेश्वर नहीं, अर्हत निद्रा रहित है (१६) सोलमा दूषण अविरति है, जिस को त्याग नहीं वह सर्व वस्तु का अभिलाषी होता है ऐसी तृष्णा वाला परमेश्वर नहीं, अर्हत भगवंत प्रत्याख्यान (त्याग) युक्त होते हैं (१७-१८) सत्तरवां और अठारवां दूषण राग और द्वेष है, राग द्वेष वाला मध्यस्थ सत्यवक्ता नहींहोता, क्योंकि उस में क्रोध, मान, माया, लोभ का संभवहै। भगवान्‌तो वीतराग, सम, शत्रु, मित्र सर्व जीवों पर समबुद्धि, न किसी को दुःखी न किसी को धन धान्य स्त्री आदि को दे सुखीकरे, आत्मा का जन्ममरण रूप संसारपरिभ्रमण रूप दुःख मिटाने, तत्त्व उपदेश देकर सुखी करतेहैं, यदि संसारसम्बन्धी दुःख वा सुख देवे तो परमेश्वर वीतराग करुणासमुद्र नहीं हो सके, राग द्वेष जिस के है वह संसारी सामान्य जीव है, परमेश्वर नहीं, अर्हत परमेश्वर वीतराग राग द्वेष रहित होते हैं।

अर्हंत के २५ नाम मुख्य हैं सो लिखते हैं—अर्हन् जिनः पारगतस्त्रिकालवित्, चीणाष्टकर्मा परमेष्ठ्यधीश्वरः ॥ शंभुस्वयंभूर्भगवान् जगत्प्रभुस्तीर्थंकरस्तीर्थंकरोजिनेश्वरः ॥१॥ स्याद्वाद्यभयदसर्वाः सर्वज्ञः सर्वदार्शीकेवलिनो देवाधिदेवबोधिद पुरुषोत्तमवीतरागाप्ता ॥ २ ॥

विशेष १००८ नाम जिन-सहस्रनाम देखो ।

अदेव का स्वरूप लिखते हैं—जो पूर्वोक्त परमेश्वर भगवान् के गुणों से रहित जिन को संसारी जीवों ने अपना मत भिन्न दिखाने अपनी बुद्धि से परमेश्वर पद में स्थापन कर लिया है । बुद्धिमान् तो अदेव का स्वरूप उक्त देवाधिदेव के स्वरूप से विपर्यय लच्चणों वालों को समझ ही लेंगे लेकिन जो विस्तार से लिखने से ही समझने वाले हैं उन्हों के लिये किंचित् लिखते हैं—

श्लोक ।

येस्त्रीशस्त्राचसूत्रादि रागाद्यंककलंकिताः ॥
निग्रहानुग्रहपरास्तेदेवास्युर्नमुक्तये ॥ १ ॥
नाट्याट्टहाससंगीताद्युपप्लवविसंस्थुलाः ॥
लंभयेयुः पदंशांतं प्रपन्नान्प्राणिनःकथम् ॥ २ ॥

इति योगशास्त्रे ॥

अर्थ—जिसके पास स्त्री हो तथा उन की मूर्त्ति के पास स्त्री हो क्योंकि जैसा पुरुष होताहै उसकी मूर्ति भी प्रायः वैसी ही होतीहै । आज कल सर्व चित्रों में उनका वैसा ही देखने में आता है सो मूर्त्ति द्वारा देव का भी स्वरूप प्रगट होजाता है । इसलिये उनकी मूर्त्ति उन पुरुषों के जीवन चरित्र ग्रंथानुसार बनी है जैसे शस्त्र, धनुष, चक्र, गदा, त्रिशूलादि जिस

के पास हो, तैसे अत्तसूत्र, जपमाला, आदि शब्द से कमंडल प्रमुख होय, राग द्वेषादि दूषणों का जिनमें चिन्ह होय, स्त्री रखनेवाला अवश्य कामी स्त्री से भोग करनेवाला होगा इससे अधिक रागवाला होनेका फिर कौनसा चिन्ह होगा, इसी काम राग के वश होकर अदेवों ने परस्त्री स्वस्त्री बेटी माता, बहिन और पुत्र की वधू प्रमुख से काम क्रीड़ा करी। उन के जीवन चरित्र पक्षपात त्याग कर विचारो, अब जो पुरुष मात्र होकर पर स्त्री गमन करता है उसे आज कल के मतावलंबियों में से कोई भी अच्छा नहीं कहता न उस समय उनों को कोई अच्छा कहताथा। परमेश्वर उनों को मानने वाले कुछ बुद्धि द्वारा विचार करें, परमेश्वर परस्त्री से काम कुचेष्टा करें उसके कुदेव होने में कोई भी बुद्धिमान् शंका नहीं करसकता। जो परणीता स्वस्त्री से काम सेवन करता है और परस्त्री का त्यागी है उसकूं भी धर्मी-गृहस्थ स्वस्त्रीसंतोषी परदारात्यागी लोग कहते हैं लेकिन उसे मुनि वा ऋषि, साधु कोई भी नहीं कहता, ईश्वर कहना तो दूर रहा क्योंकि जो आप ही कामाग्नि के कुंड में जल रहा है ऐसे में कभी ईश्वरता नहीं हो सकती। इस लिये जो राग के चिन्ह से संयुक्त है वह अदेव, पुनः जो द्वेष के चिन्ह कर युक्त है वह भी अदेव है। शस्त्र रखना द्वेष के चिन्ह हैं, धनुष, चक्र, त्रिशूल प्रमुख रक्खेगा वह अवश्य किसी अपने बाह्य शत्रु को मारना चाहता है नहीं तो शस्त्र रखने से क्या मतलब, जिस के वैर विरोध कलह लगा हुआ है वह परमेश्वर नहीं हो सकता। जो ढाल, तलवार रक्खेगा वह अवश्य भय से युक्त है जो आप भय से युक्त है उस की सेवा करने से हम निर्भय कैसे हो सकते हैं। ऐसे द्वेष संयुक्त को कौन बुद्धिमान् परमेश्वर कह सकता है, परमेश्वर तो वीतराग है, राग द्वेष युक्त जो है सो परमेश्वर नहीं, अदेव है।

जिसके हाथ में जपमाला है वह असर्वज्ञता का चिन्ह है। जो सर्वज्ञ होता तो विना माला के मणि के भी जप की संख्या कर सकता और जप करता है तो अपने से उच्च कोई दूसरा है उसका करता होगा। बुद्धिमान् विचार सकते हैं कि परमेश्वर से उच्च फिर कौन है जिसका वह जप करता है इस लिये माला जपने वाला सर्वज्ञ परमेश्वर नहीं।

कमंडल रखनेवाला परमेश्वर नहीं, कमंडल शुचि करने के लिये रखता है, अपवित्रता होती है उसके लिये कमंडल धारण किया है। परमेश्वर तो सर्वदा पवित्र है उसको कमंडल की क्या जरूरत है।

तथा जो शरीर में भस्मी लगाता है और धूणी तापता है, नंगा होकर कुचेष्टा करता है, भंग, अफीम, धतूरा, खाता है, मद्य पीता है, मांस आदि अशुद्ध आहार करताहै, हस्ती, ऊंट, बैल, गर्दभ प्रमुख पर सवारी करता है वह अदेव है। भस्मी लगाना, धूणी तापना वह किसी वस्तु की इच्छा वाला है, जिसका अभी तक मनोरथ पूरा नहीं हुआ वह परमेश्वर नहीं। स्त्री की चितामस्मी लगाने से मोह की विकल दशा जिसमें विद्यमान है, ऐसा मोह विडम्बनावाला कैसे ईश्वर हो सकता है ?

जो नशा पीता है वह नशे के अमल में आनंद और हर्ष ढूंढता है और परमेश्वर तो सदा आनंद और सुख रूप है, रोगी वा विषयी पुरुष नशा विशेषतया धारण करते हैं, परमेश्वर में वो कौनसा आनंद नहीं था सो नशा पीने से उसे मिलता है। इस हेतु से नशा पीवे, मांसादि अभक्ष खावे वह परमेश्वर नहीं।

और सवारी चढ़ना है सो पर जीवों को पीड़ा उपजाना है। परमेश्वर तो दयावंत है किसी जीव को तकलीफ नहीं देता, सवारी चढ़े सो अदेव है और असमर्थ है—

श्लोक।

स्त्रीसंगकाममाचष्टे द्वेषंचायुधसंग्रहः ॥
व्यामोहंचाक्षसूत्रादि रशौचं च कमंडलुः ॥ १ ॥

अर्थ—स्त्री का संग काम कहता है, शस्त्र द्वेष को कहता है, जप माला व्यामोह को कहती है और कमंडल जो है सो अशुचिपने को कहता है।

तैसे जो जिस पर क्रोध करे उस को बध, बंधन, मारण, रोगी शोकी इष्टवियोगी, नरक में पटकना, निर्धन, दीन, हीन, चीण करे, ऐसा निग्रह

करनेवाला अदेव है।

और जिस पर अनुग्रह (तुष्टमान्) होय उसको इंद्र, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, महामंडलीक, मंडलीक राज्यादि का वर देवे, सुंदर अप्सरा स्त्री का संयोग, पुत्र परिवारादिक का संयोग जो करें, किसी को शाप देना, किसी को वर देना, ये परमेश्वर के कृत्य नहीं, रागी द्वेषी है वह मोक्ष के तांई नहीं है, वह भूत प्रेत पिशाचादिकों की तरह क्रीड़ाप्रिय कथनमात्र देव है, आप ही राग द्वेष कर्म से परतंत्र है वह सेवकों को कैसे तार सकता है ?

जो नाद, नाटक, हास्य, संगीत इन के रस में मग्न है, बाजा बजावे, आप नाचे, औरों को नचावे, हंसे, कूदे, विषयवर्द्धक गायन गावे इत्यादि मोहकर्म के वश संसार की चेष्टा करता है ऐसे अस्थिर स्वभावी नायिका भेद में मग्न, अपने भक्तजन को शान्तिपद कैसे प्राप्त करा सकता है ? किसी ने एरंड वृक्ष को कल्पवृक्ष मान लिया तो क्या वह कल्पवृक्ष का सारा काम दे सकता है, इस प्रकार मिथ्यादृष्टियों ने पूर्वोक्त चिन्हवालों को देव मान लिया तो क्या वे परमेश्वर हो सकते हैं। प्रथम लिखे जो १८ दूषण रहित वही परमेश्वर तरणतारण देव है। फिर जगत में ८४ लाख जीवयोनी है, उस में भैंसे, बकरे आदि पंचेंद्रिय, तिर्यंच तथा मनुष्य हैं। इन जीवों को मरवाकर उन के मांस और रक्त से बलि लेकर संतुष्ट होने वाली वह जगज्जीवों का संहारकारणी जगदंबा वा जगज्जननी कैसे हो सकती है? जो माता होकर अपने बाल बच्चों का खून कर उस से प्रसन्न हो वह जगत्प्रतिपालका किस न्याय हो सकती है फिर जिसने ३ पुरुष उत्पन्न कर फिर उन तीनों की भार्या हो उनों से विषय सेवन करा वह निज पुत्रों की भार्या तीन पुरुषों से रमण करने वाली शील धारणी सती नहीं हो सकती। ऐसी ईश्वरी कदापि नहीं हो सकती, जिसने युद्ध में असंख्य मनुष्य गणादि जीवों का संहार करा ऐसी राग द्वेष से कलुषित चित्तवाली की सेवा कर हम कैसे शान्ति पद प्राप्त कर सकते हैं। फिर जो एक स्त्री के अंग से मैल का बना पुतला जिसका मस्तक अन्य ने काट डाला फिर पशु के मस्तक लगाने से जीवित करा गया वह अपने विघ्न को दूर करने

और मंगल करने समर्थ नहीं हुआ ऐसे का ध्यान स्मरण पूजन कर हम किस प्रकार विघ्न से निवृत्ति पासकते हैं। इस प्रकार कर्म से परतन्त्र जो दिन रात पर्यटन करने वाला है वह कदापि परमेश्वर नहीं जिसने अनेक कुमारी कन्याओं का ब्रह्मव्रत खण्डन कर अब्रह्म सेवन करा ऐसा कामी हमको कैसे शान्तिपद प्राप्त कर सकता है, इत्यादि लक्षण परमेश्वर के नहीं, कई कहते हैं कि पवित्रात्मा परमेश्वर ने एक स्त्री कुमारी से विषय किया, उस के पुत्र हुआ, पिता, पुत्र, पवित्रात्मा, देव परमेश्वर के ३ भेद हैं। शरीरधारी बिना स्त्री से विषय निराकार सच्चिदानन्द परमेश्वर ने कैसे करा, वीर्यपात बिना पुत्र कैसे हो सकता है? सायन्स से यह विरुद्ध वार्त्ता है, फिर लिखा है कि एक पुरुष से ईश्वर ने कुश्ती करी और गऊ के बच्छ का मांस और रोटी खाई, मांस रोटी जो खाता है वह देहधारी है, पाखाने भी जाता है, मलमूत्रादि युक्त सामान्य मनुष्य की तरह सप्तधातुनिष्पन्न शरीरवाला है, ऐसा रागी, द्वेषी ईश्वर कदापि नहीं होसकता। ईश्वर होकर स्त्री से मैथुन करे, ऐसे को ईश्वर मानने वालों की बुद्धि की कहां तक प्रशंसा करी जाय। ईश्वर का पुत्र एक दिन चलते २ थक गया, थकने वाले को समर्थ प्रभु कौन कह सकता है, ईश्वर में तो सर्व प्रकार का अनंत बल होता है इसलिये २ते चलते थकने वाला ईश्वर वा ईश्वर का पुत्र नहीं। एकदा ईश्वर के पुत्र को गुलर फल खाने की इच्छा हुई जब वृक्ष के समीप गया तो वृक्ष सूखा पाया तब क्रोध से श्राप दिया जा तेरा फल मनुष्य नहीं खावेगा, अब बुद्धिवान् विचार सकते हैं यदि ज्ञानवान् होता तो प्रथम से जान सकता कि वृक्ष सूखा है तो फिर जाता ही क्यों? इसलिये अज्ञानी ईश्वर वा ईश्वर का पुत्र कदापि नहीं हो सकता। वृक्ष को श्राप देना कितनी अज्ञानता है, वृक्ष कुछ जानकर सूखा नहीं था कि ईश्वर का पुत्र आवेगा उसके लिऐ मैं सूख जाऊं। अव्यक्त चेतन को श्राप देने वाला अज्ञानी सिद्ध होता है, ऐसा ईश्वर वा ईश्वर का पुत्र कदापि नहीं हो सकता है। फिर ईश्वर का पुत्र करामात दिखलाने खाली घड़ों में मद्य भर के दिखलाया, बाजीगर इस वखत खाली उसताबा दिखलाके फिर फूंक से पानी भरके दिखलाता है जैसे बाजीगरी का खेल। अपनी ईश्वरता मद्य पीने वालों में प्रगट करने वाला कदापि ईश्वर वा ईश्वर का

पुत्र नहीं हो सकता। जिस मद्य के पीने में ५२ अवगुण प्रगट हैं ऐसी महा अभक्ष वस्तु चेतनता नष्ट करने वाली ईश्वर को प्रगट करने की क्या गरज थी फिर अनेक पापी जनों के पाप की सजा आप भोगने मरने के सुख हुआ। ईश्वर का पुत्र अपने ईश्वर से प्रार्थना कर पापों की माफी कराने समर्थ नहीं था सो अन्य लोगों के पाप का दंड आप भोगा, पुनः यह भी गैर इन्साफ है पाप करे एक, उसका दंड पावे दूसरा, इत्यादि अनेक लक्षणों से ऐसी चेष्टा वाला न तो ईश्वर न ईश्वर का पुत्र हो सकता है। कई मतावलम्बियों ने शुद्ध पूरण ब्रह्म ज्ञानानंद ईश्वर को जगत् जीवों को सुख दुःख देने वाला जगत् सारे का न्याय करने वाला चीफजज बना डाला। दिन रात उसको इन्साफ की चिंता में मग्न रहने वाला ठहराया जैसे गरमी के मौसम में हाकिम लोग छुट्टी पर इन्साफ की चिंता से निवृत्ति पाते हैं वैसे ही जब ईश्वर उन मतावलंबियों का सर्व जगज्जीवों को सुषुप्ति में गेर देता है उन दिनों में कुछ इन्साफ से छुट्टी पाकर सुखी रहता होगा फिर उन विचारे जीवों को जाग्रत कर कर्म फल भोगाने उनका ईश्वर उद्यम करता रहता है। उन विचारे जीवों को सुषुप्ति में पड़े को क्यों ईश्वर जगाता है इसमें ईश्वर को क्या लाभ होता है प्रथम तो उन्हों को जाग्रत करना फिर वे कर्म करें उनको अच्छे बुरे का फल देना बैठे बिठाये ईश्वर को क्या गुदगुदी उठती है सो ऐसा कृत्य बेर२ करते रहता है।

इस प्रकार अनेक कलंक शुद्ध ईश्वर को मतावलम्बियों ने स्व कपोल कल्पित ग्रन्थों में लिखे हैं। ग्रन्थ गौरव भय से इहां संक्षेपतया लिखा है।

---

(१) विशेष ईश्वर को जगत् का कर्त्ता हर्त्ता मानने वालों का खंडन हमारा रचा सम्यग्दर्शन ग्रन्थ देखो।

श्री वीतरागाय नमः।

जैनधर्म की प्राचीनता का इतिहास।

(प्रश्न) जैनधर्म कब से प्रवर्त्तन हुआ (उत्तर) हे महोदय! जैनधर्म अनादि काल से जीवों को मोक्ष प्राप्त कराने वाला प्रवाह से प्रचलित है। (प्रश्न) हमने सुना है बौद्ध मत की शाखा जैन मत है और ऐसा भी सुना है जैन मत की शाखा बौद्ध मत है, किसी काल में ये एक थे और कई मनुष्य ऐसा भी कहते हैं कि विक्रम सम्वत् छः सौ के लग भग जैन मत प्रगटा है तथा कोई कहते हैं विष्णु भगवान् ने दैत्यों का धर्म भ्रष्ट करने को अर्हत का अवतार लिया तथा कोई कहते हैं मछंदरनाथ के बेटों ने जैन मत चलाया है तथा कोई कहते हैं साढातीन हजार वर्षों से और विलायतों से जैनमत इस आर्यावर्त्त में आया है इत्यादि जिस के दिल में आवे वैसी ही कल्पना कर वक उठते हैं लेकिन् इन सब दंत कथाओं को आल जंजालवत् बुद्धिमान समझ सकते हैं। प्रमाण शून्य कथन होने से विवेकी स्वबुद्ध्यनुसार ही विचार लें इन पूर्वोक्त कुविकल्पों में से कौनसा कुविकल्प सच्चा है क्योंकि एक से एक विरुद्ध कुविकल्प है इस मुजिब ही अगर सब सत्य मानने में आवे तो बांभी (ढेढ) लोक कहते हैं ब्रह्मा का बड़ा पुत्र बांभी था, बांभी की औलाद वाले सब बंभण कहलाये, इस वजे ही तैलंग देशी ढेढ अपने को मादगौड़ नाम से पुकारते हैं, कहते हैं स्वयंभू भगवान् के दो पुत्र भये, आदगौड़ और मादगौड़। आदगौड़ ब्राह्मण बजने लगे और हम लोग मादगौड़ ढेढ बजने लगे। इस बजे ही चमार कहा करते हैं चामों, और बानों, विश्वस्टजू के दो लड़कियां थी, चामों की औलाद चमार बजने लगे, बानों की औलाद बनिये, हे बुद्धिमानों यदि आप इन वृत्तांतों को सत्य कभी मान सकते हो तो पूर्वोक्त जैनधर्म की उत्पत्ति भी सत्य मानते होगे, इस्तरे शंकरदिग्विजयादिक ग्रंथों में जो जैनमत का खंडन लिखा है वह भी जैनधर्म का अनभिज्ञता सूचक है, सांप की लकीर को

सांप की बुद्धि से मारने में सांप के प्रहार नहीं लगता, जैनधर्मी जिस बात को मानते ही नहीं तो उस बात का खंडन करना ही निरर्थक भया, जिनों को वेदांती शंकरावतार मानते हैं, उन जैसों को भी जब जैनधर्म के-तत्त्वों की अनभिज्ञता थी तो आधुनिक गल्ल बजाने वालों की तो बात ही क्या कहणी है, सब बुद्धिमानों से सविनय प्रार्थना करता हूं कि पहले जैनधर्म के तत्त्वों को अच्छी तरह समझने के अनन्तर पुनः खंडन के तरफ लक्ष्य देणा, नहीं तो पूर्वोक्त स्वामीवत् हास्यास्पद बणोंगे।

अब सज्जनों के ज्ञानार्थ प्रथम इस जगत् का थोड़ा सा स्वरूप दर्साते हैं। इस जगत को जैनी द्रव्यार्थिक नय के मत से शाश्वत प्रवाह रूप मानते हैं। इस में दो काल चक्र, एकेक कालचक्र में कालव्यतिक्रम रूप छः, छः आरे वर्त्तते हैं एक अवसर्प्पिणी काल वह सर्व अच्छी वस्तु का नाश करते चला जाता है, दूसरा उत्सर्प्पिणी काल वह सर्व अच्छी वस्तु का क्रम से वृद्धि करते चला जाता है। प्रत्येक कालचक्र का प्रमाण दश कोटाकोटि सागरोपम का है, एक सागरोपम असंख्यात वर्षों का होता है, इसका स्वरूप जैन शास्त्रों से जान लेना, ऐसे कालचक्र अनंत व्यतीत हो गये और आगे अनंत बीतेंगे, एक के पीछे दूसरा शुरू होता है। अनादि अनंत काल तक यही व्यवस्था रहेगी। अब छहों आरों का कुछ स्वरूप दर्शाते हैं—

अवसर्प्पिणी का प्रथम आरा जिसका नाम सुखम सुखम कहते हैं वह चार कोड़ा कोड़ी सागरोपम प्रमाण है। उस काल में भरत क्षेत्र की पृथ्वी बहुत सुंदर रमणीक ढोलक के तले सदृश समथी, उस काल के मनुष्य तिर्यंच भद्रक सरल स्वभाव अल्प राग, द्वेष, मोह, काम, क्रोधादिवान् थे, सुंदर रूप निरोग शरीर वाले थे, मनुष्य उस काल के १० जाति के कल्प-वृक्षों से अपने खाने पीने पहनने सोने आदि की सर्व सामग्री कर लेते थे, एक लड़का एक लड़की दोनों का युगल जन्मते थे। ४६ दिन संतान हुये के पश्चात् वह मर के देवगति में इहां जितनी आयु थी उतनी ही स्थिति या कम स्थिति की आयु के देव होते थे, इहां से ज्यादा उमर वाले नहीं होते थे, तद पीछे वह संतान का युगल जब यौवन दंत होते थे, तब इस वर्त्तमान स्थित्य-

नुसार बहिन और भाई, स्त्री भर्त्तार का संबंध करतेथे, उनों के फेर यथानुक्रम युगल होतेथे, जैनमतके मापसे तीन गाउ प्रमाण उनका शरीर ऊंचाथा,तीन पल्य की आयु थी, दो सौ छप्पन्न पृष्ठ करंड (पांसली) थे, धर्म्म करना तथा पाप कृत्य जीव हिंसा, झूठ, चोरी, प्रमुख ये दोनों ही विशेष नहीं थी, गिनती के युगल थे, बाकी अन्य जीव जंतु थे, वह क्षुद्र परिणामी नहीं थे, धान्य, फल, पुष्प, इक्षु, प्रमुख पदार्थ वनों में स्वयमेव ही उत्पन्न होते थे, मनुष्यों के काम में नहीं आते थे, तिर्यंच काम में लेते थे, वल्कलचीवर पहनते थे, मरे बाद उन मनुष्यों का शरीर कर्पूरवत् हवा से उडजाता था, दुर्गंधी नहीं फैलती थी, उन १० जात के कल्प वृक्षों का नाम जैन शास्त्रों से जान लेना। जम्बूद्वीप पन्नती आदि शास्त्रों से कुछ प्रथम आरे का स्वरूप लिखा है।

असंख्यातगुण हानि होकर दूसरा आरा लगा ३ कोडा कोडी सागरोपम प्रमाण का, इस के प्रवेश समय दो गाऊ का देहमान, दो पल्य का आयु, १२८ पांशुली, बाकी व्यवस्था प्रथमारक की तरे समझ लेना।

असंख्यात गुण हानी होकर तीसरा आरा लगा, एक गाऊ का देहमान, एक पल्य की आयु, ६४ पसलिया क्रम २ से सर्व वस्तु हानी एकाएक नहीं होती। आखर उतरते अगले आरे का भाव आ ठहरता है, इस तीसरे आरे के अंत में सात कुलगर-एक वंश में उत्पन्न हुये, जिनों ने उस काल के मनुष्यों के उचित कुछ २ मर्यादा बांधी, इन ही सातों को लौकीक में मनु कहते हैं, उनों का अनुक्रम से उत्पन्न होना-उनो के नाम (१) विमल बाहन (२) चक्षुष्मान (३) यशस्वी (४) अभिचंद्र (५) प्रश्रेणि (६) मरुदेव (७) नाभि। दूसरे वंश के भी सात कुलगर भये, एवं १४ मनु, पनरमा नाभि का पुत्र ऋषभदेव एवं १५ भये। पूर्वोक्त विमलवाहनादि ७ कुलगरों के यथानुक्रम आर्याओं का नाम—(१) चंद्रयशा (२) चंद्रकांता (३) सुरूपा (४) प्रतिरूपा (५) चक्षुकांता (६) श्रीकांता (७) मरुदेवी ये सर्व कुलकर। गंगासिंधु के मध्य खंड में भये, इनों के होने का कारण कहते हैं, तीसरे आरे के उतरते काल दोष से १० जात के

कल्पवृक्ष स्वल्प होते चले, तब युगलक लोक अपने २ कल्पवृक्षों का ममत्व कर लिया, जब दूसरे युगलक दूसरे के कल्पवृक्ष से फलाशा करने लगे तब उन वृक्षों के ममत्वी उन से कलह करने लगे तब सब युगलक लोकों ने ऐसी सम्मति करी, कोई ऐसा होना चाहिये सो हमारे क्लेश का निपटारा करे उस समय उन युगल में से एक युगल मनुष्य को वन के श्वेत हस्ती ने पूर्व भव की प्रीती से अपने स्कंध पर सूंड से उठाके चढा लिया तब बाकी के युगलों ने विचारा ये हम सबों से बड़ा है, सो हाथी पर आरूढ़ फिरता है, इस वास्ते इसको अपणा न्यायाधीश बनाना चाहिये इस के वाक्य शिरोधार्य करना, बस सबों ने उसको अपणा स्वामी बनाया, इस हस्ती और युगलक का पूर्व भव संबंध आवश्यक सूत्र तथा प्रथमानुयोग ऋषभ चरित्र कल्प सूत्र की टीका से जाण लेणा।

पश्चात् उस विमलवाहन ने यथा योग्य कल्पवृक्षों का विभाग कर दिया, तदनंतर काल दोष से कोई युगल असंतुष्टता से अन्यों के कल्पवृक्ष से फल ले तब उसका स्वामी उससे क्लेश करे, यह खबर सुनके अन्य युगलों को भेज विमलवाहन पकड मंगावे और कहे हा! यह तुमने क्या किया तद पीछे वह फिर ऐसा अकृत्य नहीं करता था, विमल वाहन ने हा! इस शब्द की दंडनीति चलाई। उसका पुत्र चक्षुष्मान् भया, आप के पीछे वह राजा भया, हाकार की दंड नीति रक्खी। इसका पुत्र यशस्वी, यशस्वी का पुत्र अभिचन्द्र इन दोनों के समय में थोड़े अपराधी को हाकार और बहुत धीठ को माकार का दंड ये काम मत करना। ऐसे अभिचन्द्र का पुत्र प्रश्रेणि कुलकर (राजा) भया, प्रश्रेणि का मरुदेव, मरुदेव का पुत्र नाभि इन तीनों के समय में स्वाल्पापराधी को हाकार, मध्यम अपराधी को माकार, उत्कृष्ट अपराधी को धिक्कार ऐसे तीन दंड नीति चलती रही। इन्हों का निवास स्थान, इक्ष्वाकु भूमि साम के मुल्क में काश्मीर के पहले तरफ अब भी अयोध्या नाम से विख्यात नगर है। अयोध्या शब्दका अपभ्रंश ही अयोदिया होगा, इस अयोध्या विनीता के चारों दिशा में चार पर्वत जैन शास्त्रों में लिखा है, पूर्व दिशि में अष्टापद (कैलाश) जो कि तिब्बत के मुल्क में बरफान से आच्छादित अधुना विद्यमान है, दक्षिण

दिशा में महा शैल्य, पश्चिम दिशा में सुर शैल्य तथा उत्तर दिशि में उदयाचल पर्वत है, क्योंकि बहुत से जैन शास्त्रों में लेख है अष्टापद पर ऋषभ प्रभु समवसरे अयोध्या से भरत वंदन करने गया, ये अयोध्या अपर नाम साकेतपुर जो लखनेउ (लक्ष्मण) पुर के पास है इहां से कैलाश बहुत ही दूरवर्ती है। हरवख्त त्वरित जाना कैसे सिद्ध होसके इस वास्ते विनीता (अयोध्या) पूर्वोक्त ही संभावना है। उस ७ में नाभि कुलकर की भार्या मरुदेवा की कूख में आषाढ बदि चौथ की रात्रि को सर्वार्थ सिद्ध देव लोक से च्यव के ऋषभदेव का जीव गर्भ में पुत्रपने उत्पन्न भये, मरु देवी ने १४ स्वप्न देखे, इन्द्र महाराज ने स्वप्न फल कहा, चैत्र बदि अष्टमी को जन्म हुआ, छप्पन दिक्कुमारियों ने सूतिका का कर्म किया, ६४ ही इन्द्रों ने मेरु पर्वत पर जन्माभिषेक का महोत्सव किया। मरुदेवी ने १४ स्वप्न में प्रथम वृषभ देखा था तथा पुत्र के दोनों जंघाओं में भी वृषभ का चिन्ह था इस हेतु ऋषभ नाम दिया। बाल्यावस्था में जब ऋषभदेव को भूख लगती थी तब अपने हाथ का अंगूठा चूसते थे। इन्द्र ने अंगूठे में अमृत संचार कर दिया था, सर्व तीर्थकरों की ये मर्यादा है। जब बड़े भये तब देवता ऋषभदेव को कल्पवृक्षों के फल लाकर देते थे, वह खाते थे, जब कुछ कम एक वर्ष के भये तब इन्द्र अपने हाथ में इक्षु दंड लेकर आया उस समय ऋषभदेव नाभि राजा के उत्संग में बैठे थे, तब इन्द्र बोला हे भगवन्! "इक्षु अकु" अर्थात् इक्षु भक्षण करोगे, तब ऋषभदेव ने हाथ पसार इक्षु दंड छीन लिया, तब इन्द्रने प्रभु का इक्ष्वाकु वंश स्थापन किया तथा ऋषभदेव के अतिरिक्त अन्य युगलों ने कासका रस पीया इस वास्ते उन सबों का काश्यप गोत्र प्रसिद्ध भया। ऋषभदेव कें जिस २ वय में जो जो उचित काम करने का था वह सब इन्द्र ने किया। यह शक्र इन्द्रों का जीत कल्प है कि अवसर्पिणी काल के प्रथम तीर्थकरों का सब काम करे।

इस समय एक युगलक लड़का लड़की ताल वृक्ष के नीचे खेलते थे ताल फल गिरने से लडका मर गया, तब उस लडकी को अन्य युगलों ने नाभि कुलकर को सौंपा, नाभि ने ऋषभ की भार्या के वास्ते रखली, उसका नाम सुनंदा था, ऋषभ के संग जन्मी उसका नाम सुमंगला था, इन दोनों

कन्या संग ऋषभदेव बाल्यावस्था में खेलते यौवन को प्राप्त भये तब इंद्रादिक देव सब मिलके विवाह विधि प्रारंभ की, आगे युगलों में विवाह विधि नहीं थी इसलिये पुरुष के कृत्य तो इन्द्र ने करे और स्त्रियों के सर्व कृत्य इन्द्रानी ने करे, तब से विवाह विधि जगत में प्रचलित हुई वह १६ संस्कार में आगे लिखा है उस में देखना। अब दोनों भार्याओं के साथ ऋषभदेव पूर्ववद्ध भोगावली कर्म को क्षय करने विषय सुख भोगते हैं, जब ६ लाख पूर्व वर्ष व्यतीत भये तब सुमंगला राणी के भरत, ब्राह्मी, युगल जन्मे तथा सुनंदा के बाहुबल सुन्दरी युगल जन्मे, पीछे सुनंदा के तो कोई संतान नहीं हुआ परंतु सुमंगला ने क्रम से ४९ जोड़े पुत्रों के जना एवं सौ पुत्र दो पुत्रियां भई। उन पुत्रों के नाम—१ भरत, २ बाहुवली, ३ श्रीमस्तक, ४ श्री पुत्रांगारक, ५ श्री मल्लिदेव, ६ अंग ज्योति, ७ मलयदेव, ८ भार्गवतार्थ, ९ वंगदेव, १० वसुदेव, ११ मगधनाथ, १२ मानवर्तिक, १३ मानयुक्ति, १४ वैदर्भ देव, १५ वनवासनाथ, १६ महीपक, १७ धर्मराष्ट्र, १८ मायकदेव, १९ आसक, २० दंडक, २१ कलिंग, २२ ईषकदेव, २३ पुरुषदेव, २४ अकल, २५ भोगदेव, २६ वीर्यभोग, २७ गणनाथ, २८ तीर्णनाथ, २९ अंबुदपति, ३० आयुवीर्य, ३१ नायक, ३२ कात्विक, ३३ आनर्त्तक, ३४ सारिक, ३५ ग्रहपति, ३६ करदेव, ३७ कच्छनाथ, ३८ सुराष्ट्र, ३९ नर्मद, ४० सारस्वत, ४१ तापसदेव, ४२ कुरु, ४३ जंगल, ४४ पंचाल, ४५ शूरसेन, ४६ पुट, ४७ कालंगदेव, ४८ काशी कुमार, ४९ कौशल्य, ५० भद्रकाश, ५१ विकाशक, ५२ त्रिगर्त्त, ५३ आवर्ष, ५४ सालु, ५५ मत्स्यदेव, ५६ कुलियक, ५७ मुषकदेव, ५८ वाल्हीक, ५९ कांबोज, ६० मदुनाथ, ६१ सांद्रक, ६२ आत्रेय, ६३ यवन, ६४ आभीर, ६५ वानदेव, ६६ वानस, ६७ कैकेय, ६८ सिंधु, ६९ सौवीर, ७० गंधार, ७१ काष्टदेव, ७२ तोषक, ७३ शौरक, ७४ भारद्वाज, ७५ शूरदेव, ७६ प्रस्थान, ७७ कर्णक, ७८ त्रिपुरनाथ, ७९ अवंतिनाथ, ८० चेदिपति, ८१ विष्कंभ, ८२ नैषध, ८३ दशार्णनाथ, ८४ कुशमवर्ण, ८५ भूपालदेव, ८६ पालप्रभु, ८७ कुशल, ८८ पद्म, ८९ महापद्म, ९० विनिद्र, ९१ विकेश, ९२ वैदेह, ९३ कच्छपति, ९४ भद्रदेव, ९५ वज्रदेव, ९६ सांद्रभद्र,

९७ सेतज, ९८ वत्से, ९९ अंगदेव, १०० नरोत्तम ।

इस अवसर में जीवों के कषाय प्रबल होने लगा, अन्याय बढ़ने लगा, तब हकारादि तीनों अक्षरों का दंड लोक कम करने लगे, इस अवसर में लोकों ने सर्व से अधिक ज्ञान गुणों कर के संयुक्त श्री ऋषभदेवजी को देख युगलक सब कहने लगे हे ऋषभदेव! लोकदंड का भय नहीं करते, ऋषभदेव गर्भ में भी मति १, श्रुति २, अवधि ३, तीन ज्ञान करके संयुक्त थे, ऋषभदेवजी के पूर्व भव का वृत्तांत आवश्यक सूत्र तथा प्रथमानुयोगसे जानना । तब श्री ऋषभदेव युगलों से कहने लगे राजा होता है वह यथा योग्य अपराधी को दंड देता है । उसके मंत्री, कोटपालादिक, चतुरंगणी सेना होती है, उसकी आज्ञा अनतिक्रमणीय होती है, राजा कृताभिषेक होता है उसके नगर वप्र, अस्त्र, शस्त्र, कारागारादि अनेक राज्य शासन का प्रबंध होता है इत्यादि वचन सुन वह युगलक बोले, ऐसे राजा हमारे आप होजाओ । तब ऋषभदेव ने कहा तुम सब राजा नाभि से अरज और याचना करो तब उन्होंने वैसा ही किया, तब नाभि ने आज्ञा दी आज से ऋषभ देव तुम्हारा राजा भया, तब वे युगलक ऋषभदेवको गंगा के तट पर रेणु पुंज बना के अभिषेक करने जल लाने को पद्मनी सरोवर में गये, इस अवसर में इन्द्र का आसन कंपमान भया अवधि ज्ञान से प्रभु के राज्याभिषेक का समय जाण प्रभु पास आया, जो कुछ राजा के योग्य छत्र, चामर, सिंहासनादि सामग्री होती हैं वह सब रचे, मुकुट, कुंडल, हारादि आभरण, देव, दुष्यादि वस्त्र पहनाये और राज्याभिषेक किया, वह विधि इन्द्र दर्शित राज्याभिषेक की प्रचलित भई, तदनंतर वह युगलक पद्मणी पत्रों में जल भर २ के लाये, ऋषभ को आभरण तथा वस्त्रों से अलंकृत देख सबोंने चरणों पर वह जल डाल दिया । तब इन्द्र ने विचार किया ये सब विनीत हैं, इनके वसने को वैश्रमण को आज्ञा दी, विनीता नगरी वसाओ, तब वैश्रमण ने नगरी वसाई, इसका स्वरूप शत्रुंजय महात्म ग्रन्थ से जानना ।

अब ऋषभदेव उपयोगार्थ वनमें से हस्ती, घोड़े, ऊंट, गऊ आदिक जीवों को पकड़ मंगा के उपभोगलायक करे, अब प्रभु प्रजा की वृद्धि करने को

स्वगोत्र का विवाह बंध करने, भरत के संग जन्मी ब्राह्मी को बाहुबलि को ब्याही, बाहुबली के संग जन्मी सुन्दरी को भरत से ब्याही, ऐसा जुगल धर्म दूर किया, अन्य युगल भी इस बात का रहस्य जान के अन्यों के जांत को पुत्री देने से क्रम से कोट्यावधि प्रजाकी वृद्धि भई। ऋषभ ने दूध टाल के स्वपुत्रियों का ब्याह किया, वही मर्याद आजकल भी यवन जाति करती है। यवन पुत्र से यवन देश वसा, वह सब यवन कहलाये, वह देश आदन. जंगवार नाम से अधुना प्रसिद्धी में है। तब पीछे प्रभु ने चार वर्ण की स्थापना करी। जिसको दंडपासक (कोटवाल) न्यायाधीश बणाया, उन्हों का उग्रवंश स्थापन किया। १ उसके आवांतर नाजम, १ तैसीलदारादिक अनेक अधुना भेदांतर प्रचलित हैं। वह उग्रवंशी अधुना अग्रवाल वैश्य नाम से प्रसिद्ध है, जो भगवान ने अपने कायरक्षक चित्रगुप्त युगल को बनाया। वह अधुना कायस्थ नाम से प्रसिद्ध है। ये प्रभु पास शस्त्र बांध प्रहरा देना, अलंकारादि शृंगार लिखना, हिफाजत करना इत्यादि चारों वर्णों का काम प्रभु के काय रक्षार्थ करते थे, तथा जिसको प्रभु ने गुरु अर्थात् ऊंच वडे करके माना उन्हों का भोगवंश स्थापन किया (वह राजगुरु प्रोहित बजते हैं) वा १० भोजक जाति, २ जो ऋषभदेवजी के मित्र या निज परवार उन्हों का राजन्यवंश स्थापन किया, ३ शेष सर्व प्रजा का क्षत्रिय वंश स्थापन किया (४) उग्र १, भोग २, राजन्य ३, क्षत्रिय ४, ऐसे ४ वर्ण की स्थापना करी, गृह हट्ट पुलादि बांधने का शिल्प जिसको सिखाया वह वार्द्धकी सूत्रधार शिलावटादि नाना भेद से प्रचलित हुये। अब अन्नादि आहार प्रभुने इस कारण प्रवर्ताया, काल दोष से कल्पवृक्षों के फल का अभाव हुआ तब लोक कंद, मूल, पत्र, फूल, फल खाने लगे कई एक इक्षु का रस पीने लगे तथा नाना जात के कच्चा अन्न खाने लगे लेकिन वह उन्हों के उदर में जीर्ण नहीं होने लगा, पीडा होने से ऋषभ नाथ को अपना दुःख निवेदन करने लगे। तब प्रभु ने कहा इस अन्न को मसल तूंतडे दूर कर खाया करो जब वह भी नहीं पचने लगा तब जल में भिगा के खाना कहा जब वह भी नहीं पचा तब कूट-कर खाना बतलाया ऐसे नाना विध बतलाने पर भी वह नहीं जीर्ण होने लगा इस अवसर में

वन में वांसादिक के आपस में घर्षण होने से अग्नि उत्पन्न भई, कोई कहेगा ऋषभदेवजी को जाति स्मरण तथा मति आदि तीन ज्ञान था तो प्रथम ही से अग्नि क्यों नहीं उत्पन्न करली और अग्नि पक्क आहारादि की विधी क्यों नहीं सिखलाई? हे भव्य! एकांतस्निग्ध काल में और एकांत रूक्ष काल में अग्नि किसी वस्तु से भी बाहिर प्रगट नहीं हो सक्ती थी। जब सम काल आता है तभी पैदा होती है, प्रत्यक्ष भी एक प्रमाण है चिरकालीन बंध तल घर में अगर दीपक ले जाया जायगा तो तत्काल दीपक स्वतः बुझ जाता है ऐसे पूर्वोक्त काल में कोई देवता बलात्कार विदेह क्षेत्रों से अग्नि ले भी आवे तो उस स्थान तत्काल बुझ जाती है इस वास्ते अग्नि में पकाकर खाना नहीं बतलाया, पीछे वह वनोत्पन्न अग्नि तृणादि दाहकर्त्ता देख अपूर्व निर्मल रत्न जाण युगल हाथोंसे पकड़नेलगे। जब हाथ जल गया तब भय से दौड़ ऋषभदेवजी को सर्व वृत्तांत कहा, प्रभु ने अग्निं दाह निवर्त्तनी वनौपधी से उन्हों का दग्ध शरीर अच्छा किया और अग्नि को लाने की विधि बताई, उस क्रिया से वे लोक अग्नि को अपने २ घरों में ले आये तब ऋषभनाथ हस्ती पर आरूढ होकर बहुत पुरुषों के संग गंगातट की चिकणी मट्टी ले एक मृत्पात्र बना कर उन्होंसे अग्नि में पक्क करा कर उसमें जल का प्रमाण आदि विधि से तंदुलादि पकान्न कराकर उन्हों को भोजन कराया जिससे वो मृत्पात्र अग्नि पक्क कराया था उसको कुंभकार प्रजापति नाम से प्रसिद्ध किया तदनंतर शनैः शनैः अनेक भांत के आहार व्यञ्जनादि प्रभु ने सर्वो को पक्क कर खाना सिखाया, विशेप साधन दिन २ प्रति सिखाने लगे, उस अग्नि को प्राण रक्षक समझ लोक देव करके पूजने लगे, क्रम से अग्नि को माननीय किया, अब ऋषभनाथ के उपदेश से पांच मूल शिल्प अर्थात् कारीगर बने। कुंभकार १, लोहकार २, चित्रकार ३, वस्त्र बुनने वाले ४, नापित (नाई)५, इन एकेक शिल्प के आवांतर भेद, वीश वीश है एवं सौशिल्प का भेदांतर उत्पन्न किया।

पीछे कर्म द्वार प्रगट करा, असी शस्त्रों से १ मसी, लिखने वगैरह से, २ कृषि, खेती आदि करने से, ३ आजीविका, उदर वृत्ति सिखलाई, लिखने

में व्यापार करना, व्याज वृद्धि, धनका ममत्व करना, इत्यादि का समावेश है, प्रथम मट्टी के संचय बनाकर वनस्पती तथा अन्य द्रव्य से मृत्तिका गत लोहेकूं गलाकर अहरण, हथोड़ी, सांडसी प्रमुख बनाये, उनों से अन्य सर्व वस्तु बणाई ।

अब भरतादि प्रजा लोकों को ७२ कला सिखलाई, उनों का नाम लिखने की कला, १ पढ़ने की कला, २ गणित कला, ३ गीत कला, ४ नृत्य कला, ५ ताल बजाना, ६ पटह बजाना, ७ मृदंग बजाना, ८ भेरी बजाना, ९ वीणा बजाना, १० वंश परीक्षा, ११ भेरी परीक्षा, १२ गज शिक्षा, १३ तुरंग शिक्षा, १४ धातुर्वाद, १५ दृष्टिवाद, १६ मंत्रवाद, १७ वलि पलित विनाश, १८ रत्न परीक्षा, १९ नारी परीक्षा, २० नर परीक्षा, २१ छंद बंधन, २२ तर्क जल्पन, २३ नीति विचार, २४ तत्व विचार, २५ कवि शक्ति, २६ ज्योतिष शास्त्र ज्ञान, २७ वैदिक, २८ षड् भाषा, २९ योगाभ्यास, ३० रसायण विधि, ३१ अंजन विधि, ३२ अठारह प्रकार की लिपि, ३३ स्वप्न लक्षण, ३४ इंद्र-जाल दर्शन, ३५ खेती करना, ३६ वाणिज्य करना, ३७ राजा की सेवा, ३८ शकुन विचार, ३९ वायु स्तंभन, ४० अग्नि स्तंभन, ४१ मेघ वृष्टि, ४२ विलेपन विधि, ४३ मर्दन विधि, ४४ ऊर्ध्व गमन, ४५ घट बंधन, ४६ घट भ्रमन, ४७ पत्र छेदन, ४८ मर्म भेदन, ४९ फलाकर्षण, ५० जला-कर्षण, ५१ लोकाचार, ५२ लोक रंजन, ५३ अफलवृक्ष सफल करण, ५४ खड्ग बंधन, ५५ छुरी बंधन, ५६ मुद्राविधि, ५७ लोहज्ञान, ५८ दंतसमारण, ५९ काल लक्षण, ६० चित्र करण, ६१ बाहु युद्ध, ६२ मुष्टि युद्ध, ६३ दृष्टि युद्ध, ६४ दंड युद्ध, ६५ खड्गयुद्ध, ६६ वाग्युद्ध, ६७ गारुडीविद्या, ६८ सर्पदमन, ६९ भूत मर्दन, ७० योग, द्रव्यानुयोग, अक्षरानुयोग, व्याकरण, औषधानुयोग, ७१ वर्ष ज्ञान, ७२ नाम माला, ये पुरुषों की ७२ कला ।

अथ अपणी पुत्रियादि स्त्रियों को ६४ कला सिखलाई उनों के नाम ।

नृत्य कला १, औचित्य कला २, चित्रकला ३, वादित्र ४, मंत्र ५, तंत्र ६, ज्ञान ७, विज्ञान ८, दंभ ९, जल स्तंभ १०, गीत गान ११, ताल मान

१२, मेघवृष्टि १३, फलाकृष्टि १४, आराम रोपण १५, आकारगोपन १६, धर्म विचार १७, शकुन विचार १८, क्रिया कल्पन १६, संस्कृत जल्पन २०, प्रासाद नीति २१, धर्म नीति २२, वर्णिका वृद्धि २३, स्वर्ण सिद्धि २४, तैल सुरभी करण २५, लीला संचरण २६, गज तुरंग परीक्षा २७, स्त्री पुरुष के लक्षण २८, काम क्रिया २६, अष्टादश लिपि परिच्छेद ३०, तत्काल बुद्धि ३१, वस्तु शुद्धि ३२, वैद्यक क्रिया ३३, सुवर्ण रत्न भेद ३४, घट भ्रम ३५, सार परिश्रम ३६, अंजन योग ३७, चूर्ण योग ३८, हस्त लाघव ३६, वचन पाटव ४०, भोज्य विधि ४१, वाणिज्य विधि ४२, काव्य शक्ति ४३, व्याकरण ४४, शालि खंडन ४५, मुख मंडन ४६, कथा कथन ४७, कुसुम गूंथन ४८, वरवेष ४६, सकलभाषा विशेष ५०, अभिधानपरिज्ञान ५१, आभरण पहनना ५२, भृत्योपचार ५३, गृह्याचार ५४, शाठ्यकरण ५५, पर निराकरण ५६, धान्य रंधन ५७, केश बंधन ५८, वीणादि नाद ५६, वितंडावाद ६०, अंक विचार ६१, लोक व्यवहार ६२, अंत्याक्षरिका ६३, प्रश्न प्रहेलिका ६४, एवं स्त्रियों को ६४ कला सिखलाई।

इस काल में जो जो कलायें चल रही हैं वह सर्व पूर्वोक्त कलाओं के अंतर्गत ही हैं, जैसे प्रथम लिपि कला के १८ भेद ब्राह्मी निज पुत्री को दक्षिण हाथ से लिखणी सिखाई, १ हंसलिपि, २ भूतलिपि, ३ यक्षलिपि, ४ राक्षसलिपि, ५ यावनी लिपि, ६ तुरकीलिपि, ७ कीरीलिपि, ८ द्राविड़ी लिपि, ६ सैंधवीलिपि, १० मालवीलिपि, ११ नड़ीलिपि, १२ नागरीलिपि, १३ लाटीलिपि, १४ पारसीलिपि, १५ अनिमत्तीलिपि, १६ चाणकीलिपि, १७ मूलदेवीलिपि, १८ उड्डीलिपि, ये अठारे ब्राह्मीलिपि नाम से प्रसिद्ध करी, भगवती सूत्र में गणधरों ने ब्राह्मी लिपि को नमन करा है फिर देश भेद से नानालिपि होगई जैसे १ लाटी, २ चौड़ी, ३ डाहली, ४ कानड़ी, ५ गौर्जरी, ६ सोरठी, ७ मरहटी, ८ कोंकणी, ६ खुरासाणी, १० मागधी, ११ सिंहली, १२ हाडी, १३ कीरी, १४ हम्मीरी, १५ परतीरी, १६ मसी, १७ मालवी, १८ महायोधी, इस काल में कइयां कामदारी, गुरुमुखी, वाणिका आदि अनेक लिपि प्रचलित हैं, इस तरह सुन्दरी पुत्री को वामहस्त से अंक विद्या सिखाई जो जगत् में प्रचलित है। जिन्हों से

अनेक कार्य सिद्ध होते हैं वह सब प्रथम से इस अवसर्पिणी काल में ऋषभदेव ने प्रवर्चाये हैं जिस में कितनीक कला कई वेर लुप्त हो जाती हैं और फेर सामग्री पाकर पुनः प्रगट हो जातीहैं, जैसे रेल, तार, विजली, नाना मिसन अनेक भांति फोनोग्राफ, मोटर, वाइसिकिल, विलोन (विमान) आदि अनेक वस्तु द्रव्यानुयोग जो पहले लिखा है उस के अंतर्गत ही जाननी, परन्तु नवीन विद्या वा कला कोई भी नहीं, शतघ्नी (बंदूक) सहस्रघ्नी (तोप) इस के नाना भेद पूर्वोक्त लोह ज्ञानकला के आवांतर हैं। किसी काल में कागज बनने की क्रिया लोग भूल गये थे तब ताड़ पत्र, भोज पत्र आदि से काम चलाने लगे, तदनंतर फेर सामग्री पाकर कागजों की कला प्रकट हो गई लेकिन जब लिखत कला, चित्रकला तथा ७२ कला के शास्त्र लिखने को अवश्य ही कागज भी ऋषभदेवजी ने वनाना प्रथम प्रचलित कराथा, बिना कागद वही खाते व्यापार किसी तरह भी चलना सम्भव नहीं, ऋषभदेव ने सर्व कला उत्पन्न करी, यह सब आवश्यक सूत्र में लिखी है, ऋषभदेव ने पूर्व ६३ लाख वर्षों तक राज्य करा, प्रजा को सुख साधन सामग्री तथा नीति में निपुण करा, इस हेतु से ऋषभदेवजी को जैनी लोक जगत् का कर्त्ता मानते हैं परन्तु पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पती, जीव इत्यादि सर्व पदार्थ अनादि अनंत ध्रुव, तीनों काल में मानते हैं, सूक्ष्म अग्नि सब द्रव्यांतर्गत मानते हैं, स्थूलाग्नि को नित्यानित्य मानते हैं, जड़ पदार्थ में नाना कार्यकरणसत्ता व्यापक है लेकिन चेतनत्व धर्म जीव में है। १ द्रव्य, २ क्षेत्र, ३ काल, की अपेक्षा से दूसरे मतों वाले जो ईश्वर की करी सृष्टि मानते हैं वे भी ईश्वर, आदीश्वर, जगदीश्वर, योगीश्वर, जगत्कर्त्ता, आदि-ब्रह्म, आदि विष्णु, आदि योगी, आदि भगवान्, आदि अर्हत, आदि तीर्थंकर, प्रथम बुद्ध, सब से बड़ा, आदम, अल्ला, खुदा, रसूल इत्यादि जो नाम महिमा गाते हैं वह सर्व ऋषभदेवजी के ही गुणानुवाद हैं और कोई भी निराकार सृष्टि का कर्त्ता नहीं है।

मूर्ख और अज्ञानियों ने स्वकपोल कल्पित शास्त्रों में ईश्वर विषय में मनमानी कल्पना करली है, उन कल्पना को वहुत जीव आज तक सची मानते चले आये हैं, कोई तो कहता है महादेव, (महेश्वर) भस्म जैसे

से सृष्टि रची है, कोई कहता है विष्णु, जलशायी ने ब्रह्मा को रच सृष्टि रची है, कोई कहता है देवी ने ब्रह्मा, विष्णु, शंकर तीनों को रचकर पश्चात् वह देवी सावित्री, लक्ष्मी और पार्वती तीनों रूप रच कर तीनों की क्रम से स्त्री होकर के सृष्टि उत्पन्न करी, इत्यादि अनेक मत तो पुराणोक्त हैं। एक स्वामी वेद के अखर्वगर्वी बन के कह गये ईश्वर, पुरुष और स्त्रियों के तरुण जोड़े रचकर तिब्बत के मुल्क में पटक दिये उस से सृष्टि का प्रवाह शुरू हो गया, उस को २८ चौकड़ी शतयुगादि की बीती है इत्यादि अनेक कल्पना करते हैं क्योंकि प्रायः सर्व मत एक जैन धर्म विना ब्राह्मणों ने चलाये हैं, ब्राह्मण ही मतों के विश्वकर्मा हैं, लौकिक शास्त्र में जो कुछ है सो ब्राह्मणों के वास्ते ही है, ब्राह्मणों को लौकिक शास्त्र ने तार दिया, क्योंकि शास्त्र बनाने वालों के संतानादि खूब खाते, पीते, आनन्द करते हैं, इन ब्राह्मणों की उत्पत्ति तथा वेदों की उत्पत्ति जैसे आवश्यकादि शास्त्रों में लिखी है वह भव्य जीवों के ज्ञानार्थ यहां लिखता हूं।

निदान सर्व जगत् का व्यवहार प्रवर्त्ता कर भरत पुत्र को विनीता नगरी का राज्य दिया, और बाहुबली को तक्षशिला का राज्य दिया, (उस तक्षशिला का अब पता अंग्रेज सरकार ने पाया है, प्रयाग के सरस्वती पत्र में लिखा देखा था) बाकी सब पुत्रों के नाम से देश बसा २ कर ९८ में पुत्रों को दे दिया, भारत के ३ खंड को प्रफुल्लित करा, जैसे (१) अंग पुत्र से अंग देश, (२) वंग पुत्र से वंग देश, (३) मरु पुत्र से मरुदेश, (४) जांगल से जंगल देश इत्यादि सर्व जान लेणा।

पीछे श्री ऋषभदेव ने स्वयमेव दीक्षा ली, उनों के संग कच्छ, महाकच्छादि चार हजार सामंतों ने दीक्षा ली।

ऋषभदेवजी पूर्वबद्ध अंतराय कर्म के वश, एक वर्ष पर्यंत आहार पानी की भिक्षा नहीं पाई, तब ४ हजार पुरुष भूख मरते जटाधारी कंद, मूल, फल, फूल, पत्रादि आहार करते गंगा के दोनों किनारे ऊपर वल्कल चीर पहन कर, तापस बन कर रहने लगे और ऋषभदेवजी के एक हजार आठ नामों की शृंखला रच कर जंप, पाठ, ध्यान आदि सुकृत्य करने लगे

यह जिन-सहस्रनाम है, साढी आठसे वर्ष हुए रामानुज स्वामी से वैष्णव मत प्रगटा, तब उस जिन सहस्रनाम की प्रतिच्छाया विष्णुसहस्रनाम रचा गया, विक्रम सम्वत् १५३५ में वल्लभाचार्यजी से गोपालसहस्र नाम रचा गया। तदनंतर वह कर्म एक वर्ष पीछे क्षय होने से वैशाख सुदि तीज को हस्तिनापुर में आये वहां श्री ऋषभदेवजी का पड़ पोता जाति स्मरण ज्ञान के बल से प्रभु को भिक्षा वास्ते पर्यटन करते देख के महल से नीचे उतरा, प्रभु के पीछे हजारों लोक, कोई हाथी, कोई घोडा, कोई कन्या, साल, दुशासा, रत्न, मणि, सोना इत्यादि भेट कर रहे हैं, स्वामी तो विरक्त, वे पदार्थ इच्छते नहीं, क्योंकि उस समय के लोकों ने आहारार्थी, भिक्षाचर, कोई भी देखा नहीं था, तब श्रेयांस कुमार ने सौ इक्षु, रस के भरे घडों से पारणा कराया तब सब लोक श्रेयांस कुमार को पूछने लगे तुमने भगवान् को आहारार्थी कैसे जाना, तब श्रेयांस ने अपने और ऋषभदेवजी के पूर्व आठ भवों का संबंध कहा, उहां साधुओं को दान दिया था इस वास्ते आहारार्थी भगवान् को जाना तब से सब लोक ने साधुओं को आहार दान की विधि सीखी, तदनंतर प्रभु एक हजार वर्ष तक देशों में छद्मस्थपणे विचरते रहे। उस समय में कच्छ और महाकच्छ के बेटे नमि, विनमी ने आकर प्रभु की बहुत भक्ति सेवा करी, तब धरणेंद्र ने प्रभु का रूप रच कर अडतालीस हजार सिद्ध विद्या उनों को देकर वैताढ्य गिरि की दक्षिण और उत्तर यह दोनों श्रेणिका राज्य दिया। विद्या से मनुष्यों को लाकर बसाया, वह तिब्बत प्रसिद्ध है इन ही विद्याधरों के वंश में रावण, कुंभकर्ण तथा बाली, सुग्रीवादि और पवन, हनुमानादि, इन्द्र आदि असंख्य विद्याधर राजा होगये, इनों में से रावणादि ३ भ्राता पाताल लंका में जन्मे थे, केइयक इसको अमेरिका अनुमान करते हैं, नीची बहुत होने से श्रीकृष्ण भी द्रौपदी लाने को अमरकंका रथ से समुद्र में देवतादत्त स्थल मार्ग से ४-५ मास में पहुंचे का जैन शास्त्रों में उल्लेख है परंतु उस अमरकंका को, धात की खंडनामा दूसरे द्वीप की एक राजधानी लिखी है, बहुश्रुति के वाक्य इस में प्रमाण हैं तत्व केवली गम्य है।

अब श्री ऋषभदेवजी छद्मस्थपणे विहार करते बाहुबाले की तक्ष-

शिला नगरी में गये, बाहिर वन में कायोत्सर्ग में सांझ समय आकर सम-
वसरे जब बाहुबलि को खबर मिली तब बाहुबलि ने मनमें विचार करा कि
कल बड़े आडम्बर से पिता को वंदन करने जाऊंगा, प्रभात समय सेन्यादि
सझते देरी हो गई, भगवान् अप्रतिबद्ध विहारी सूर्योदय होते ही विहार
कर गये, बाहुबलि आया, भगवान् को जब नहीं देखा तब उदास होकर
कानों में अंगुली डाल के बड़े ऊंचे स्वर से पुकारा, बाबा आदिम, बाबा
आदिम, कौन जाने इस ही विधि को यवन लोक काम में लेने लगे, तद-
नन्तर बाहुबल ने भगवान् के चरणों पर धर्मचक्रतीर्थ की स्थापना करी, ये
चरण अभी सिंहलद्वीपांतर्गत सीलोन में विद्यमान हैं, उहां के लोक कहते हैं,
आदिम बुद्ध, आस्मान से पहले इहां उतरा था, उसके चरण हैं, एक आधु-
निक जैन साधु ने अपणे रचित भाषा ग्रंथ में लिखा है वह धर्मचक्रतीर्थ,
विक्रम राजा के वख्त तक तो विद्यमान था पीछे जब पश्चिम देश में मत
मतांतर उत्पन्न हो गये तब से वह तीर्थ अस्त हो गया। तदपीछे श्रीऋषभ
देवजी ब्राल्हीक, जोनक, अडंब, (अरब) मक्के में भी चरण हैं, इल्लाक, सुवर्ण
भूमि, पल्लवकादि देशों में विचरने लगे, जिन २ देशवालों ने ऋषभदेवजी
का दर्शन करलिया, वह सवभद्रक स्वभाव वाले होगये, शेष जो रहे वे
सब म्लेच्छ, निर्दयी, अनार्य होगये, अनेक कल्पनाके मत माननेलगे, उनों
का आचार, विचार विलक्षण ही बनगया, उससमय समुद्र खाड़ी अब है
उन स्थलों में नहींथा, जगती के बाहिर था, ऋषभदेव के पीछे पचास
लाख कोड सागरोपम वर्ष व्यतीत होने पर सगर चक्रवर्त्ति के पुत्र जन्हु
इस समुद्र का प्रवाह कैलास पर्वत पर भरत चक्री का कराया जिन मंदिर
के रक्षार्थ लाया ऐसा शत्रुंजय महात्म्य ग्रंथ में लिखा है, उस जल से बहुत
देश नष्ट हो गये, ऊंचेस्थलों में भाग २ कर मनुष्य बस गये, वह जर्मनी,
फ्रांसादि देश है। पीछे जन्हु के पुत्र भगीरथ को भेज सगर चक्री पीछा प्रवाह
दक्षिण समुद्र में मिलाया, गंगा को फांट कर पूर्व समुद्र में मिलाई तब से
गंगा का नाम जान्हवी, भागीरथी कहलाया, इस तरह छद्मस्थपणे विचरते
ऋषभदेव को एक हजार वर्ष व्यतीत हो गया, तब विहार करते विनीता
नगरी के पुरीमताल नामा बाग में आये तब बड़ वृक्ष के नीचे फागुण

वदि एकादशी के दिन, तीन दिन के उपवासी थे, तहां पहले प्रहर में केवल ज्ञान भूत भविष्यत् वर्त्तमान में सर्व पदार्थों के जानने देखने वाला आत्मस्वरूप रूप प्रगट हुआ, तब चौसठ इंद्र आये, देवताओं ने समवसरण की रचना करी, प्रथम रजतगढ़, सोने के कांगरे, द्वितीय स्वर्णगढ़ रत्न के कांगरे, तीसरा रत्न का गढ़, मणि रत्न के कांगरे, मध्य में मणिरत्न की पीठिका, उस पर फटिक रत्न के ४ सिंहासन, भगवान के शरीर से १२ गुण ऊंचा अशोक वृत्त की छांह. एकेक गढ़ के चारों दिशा में चार २ द्वार बड़े दरवज्जे के आस पास दो छोटे दरवाजे, बीस हजार पैड़ी एकेक दिशि में। अब ऋषभदेव के सदृश तीन सिंहासन पर तीन बिंब देवताओं ने स्थापन करा, जब जिस दरवाजे से कोई आता है उस तरफ ही श्रीऋषभदेव दीखते थे, इस वास्ते जगत में चार मुखवाला श्री भगवान् ऋषभदेव ब्रह्मा के नाम से प्रसिद्ध हुआ, विश्व की पालना करने से लोकों में विष्णु नाम से ऋषभदेव प्रसिद्ध हुआ, जगत को सुख प्राप्त करने से शंकर नाम से ऋषभदेव प्रसिद्ध हुआ, देवतों से अर्चित होने से बुद्ध कहलाये, अथवा विना गुरु ही ज्ञानवान् सर्व तत्व के वेत्ता होने से बुद्ध नाम से प्रसिद्ध हुआ।

जब ऋषभदेवजी के केवल ज्ञान की वर्द्धापनिका राजा भरत को प्राप्त हुई तब ही आयुधशाला में चक्र रत्न उत्पन्न हुआ उसकी भी वर्द्धापनिका उसी समय आई, ऋषभदेवजी वनोवास पधारे, तब से माता मरुदेवा भरत को उपालंभ देती थी रे भरत! तुम सब भाइयों ने मिलके मेरे पुत्र का राज्य छीन के निकाल दिया, मेरा पुत्र भूख, प्यास, शीत, उष्ण, डांस, मच्छरादि अनेक दुःख से दुःखी होगा, तुम कभी मेरे पुत्र की सार संभाल लेवे नहीं, ऐसा दुःख कर २ रो रो के आंखों से अंधी होगई, उस समय भरत राजा ने मरुदेवा से वीनती करी हे मात तूं निरन्तर मुझे ओलंभा देती है, चल देख तेरा पुत्र कैसा सुखी है सो तुझे दिखलाऊं, हस्ती पर आरूढ कर आप महावत बन समवसरण को आने लगा, देवतों के गमनागमन का कोलाहल सुन मरुदेवा पूछती है ये अव्यक्त ध्वनि कहां हो रही है, तब भरत ने स्वरूप कहा, मरुदेवा नहीं मानती है, आगे देव दुंदुभि का शब्द आकाश में वजता सुण मरुदेवा

भरत से पूछती है, ये वाजित्र कहां बज रहे हैं, भरत ने कहा हे माता, तेरे पुत्र के सामने देवता बजा रहे हैं तो भी मरुदेवा नहीं मानती है, तब भरत बोला हे माता, देख तेरे पुत्र का रजत स्वर्ण रत्न मई गृह जिस के आगे हजार योजन का इंद्र ध्वज लहक रहा है, कोटान कोटि देव वृंद ६४ इंद्र जिस के चरणों में लुटते जय २ ध्वनि कर रहे हैं, कोटि सूर्य के तेज से देदीप्यमान तेरे पुत्र के पिछाड़ी भामंडल सोभता है, इंद्र चमर ढुला रहे हैं, इस समवसरण की महिमा मैं मुख से वर्णन नहीं कर सकता तू देखेगी तब ही सत्य मानेगी, ऐसा सुण सत्य मान के आंखें मसलने लगी, आंख निष्पटल हो गई, सब स्वरूप देख मरुदेवा विचारती है, धिक् २ पापकारी मोह को, मैं जाणती थी मेरा पुत्र दुःखी होगा, ये इतना सुखी है, मुझे कभी पत्र भी नहीं दिया कि हे माता तूं फिकर नहीं करणा मैं अतीव सुखी हूं, मेसरागणी, ये वीतराग इस मुजब भावना भाते, क्षपक श्रेणी चढ केवल ज्ञान पायकर हस्ति पर ही मुक्ति को प्राप्त हो गई।

तब शोकातुर भरत को इंद्रादिक देवता समझा के भगवान के पास लाये, भगवान ने संसार की अनित्यता बता कर शोक दूर करा, तब से उठावणे की रीति चली, उस समय समवसरण में भरत के पांचसो पुत्र, सातसे पोते, दीक्षा ली, ब्राह्मी ने तथा और भी बहुतसी स्त्रियों ने दीक्षा ली, भरत के बड़े पुत्र का नाम ऋषभसेन पुंडरीक था, वह सोरठ देश में शत्रुंजय तीर्थ ऊपर मोक्ष गया, इस वास्ते शत्रुंजय तीर्थ का नाम पुंडरीकगिरि प्रसिद्ध हुआ।

भरत के पांचसो पुत्रों ने जो दीक्षा ली थी उस में एक का नाम मरीचि था, वो मरीचि ने जैन दीक्षा का पालना कठिन जान अपनी आजीविका चलाने वास्ते नवीन मनः कल्पित उपाय खड़ा किया, गृहवास करने में हीनता समझी, तब एक कुलिंग बनाया, साधु तो मन दंड, वचन दंड, काया दंड, से रहित है और मैं इन तीनों से दंडा हुआ हूं, इस वास्ते मुझे त्रिदण्ड रखना चाहिये, साधु तो द्रव्य भाव कर के मुंडित है सो लोच करते हैं और मैं द्रव्य मुंडित हूं इस वास्ते मुझे उस्तरे से शिर मुंडवाना

चाहिये, शिखा भी रखना चाहिये, साधु तो पंच महाव्रत पालते हैं और मेरे तो सदा स्थूल जीव की हिंसा का त्याग रहो और साधु तो सदा निःकंचन है अर्थात् परिग्रह रहित है और मुझ को एक पवित्रिका रखनी चाहिये, साधु तो शील से सुगंधित है और मुझे चंदनादि सुगंधी लेणी चाहिये, साधु मोह रहित है, मुझ मोह युक्त को छत्र रखना चाहिये, साधु पांवों में जूते नहीं पहनते मुझ को उपानत् रखना चाहिये, साधु तो निर्मल हैं, इस वास्ते उनों के शुक्लाम्बर है, मैं क्रोध, मान, माया, लोभ, इन चारों कषायों से मैला हूं, इस वास्ते मुझ को कषायले, गेरू के रंगे (भगवें) वस्त्र रखना चाहिये, साधु तो सचित्त जल के त्यागी हैं, इस वास्ते मैं छान के सचित्त (कच्चा जल) पीऊंगा, स्नान भी करूंगा। इस तरह स्थूल मृषा वादादि से निवृत्त हुआ, ऐसा भेष मरीचि ने बनाया, इहां से परिव्राजकों की उत्पत्ति हुई।

मरीचि भगवान के साथ ही विचरता रहा, लोक साधुओं से विसदृश लिंग देख के मरीचि से धर्म पूछते थे, तब मरीचि साधुओं का यथार्थ धर्म कहता था, और अपना पाखंड वेष, स्वकल्पित यथार्थ कह देता था, जो पुरुष इस के पास धर्म सुण दीक्षा लिये चाहता, उस को भगवान के साधुओं के पास दिला देता था, एकदा समय मरीचि रोग ग्रसित हुआ, साधु कोई भी इस की वेयावृत्य करे नहीं, तब मरीचि ने बिचारा मैं असंयति हूं इस वास्ते साधु मेरी वेयावृत्य करते नहीं और मुझे करानी भी उचित नहीं, अच्छा होने बाद कोई चेला भी करना चाहिये, जिस से ग्लान दशा में सहायक होय, केई दिनों से निरोग हुआ, इस समय एक कपिल नाम का राजपूत मरीचि पास धर्म सुन प्रतिबोध पाया, और पूछने लगा, जो धर्म साधु का तुम ने कहा सो तुम नहीं पालते, मरीचि ने कहा मैं पालने को समर्थ नहीं हूं, तू ऋषभदेव पास जाकर दीक्षा ले, तब मरीचि समवसरण में गया, भगवान को छत्र चामर सिंहासनादि प्रातिहार्य युक्त और देवांगनों से गुण-गीयमान देख भारी कर्मापने से पीछा मरीचि के पास आया और बोला ऋषभदेव पास तो धर्म नहीं है, वह तो राज्य लीला से भी अधिक सुख का भोक्ता है, इहां एक साधु लिखते हैं ऋषभदेव उस समय निर्वाण प्राप्त हो चुके थे, ये वार्त्ता पीछे की है, निदान मरीचि ने कहा ऋषभदेव के

साधुओं का धर्म मुझे रुचता नहीं, तुम कहो तुमारे पास धर्म है या नहीं तब मरीचि ने जाना ये बहुल संसारी जीव है, मेरा ही शिष्य होने योग्य है, तब स्वार्थ बश कह उठा, उहां भी धर्म है और कुछइक मेरे समीप भी धर्म है, इस उत्सूत्र वचन के लेश से एक कोटा कोटि सागर काल का संसार में जन्न मरण की वृद्धि करी, कपिल मरीचि का शिष्य हो गया, उस वखत तक मरीचि तथा कपिल पास कोई भी पुस्तक नहीं था, निकेवल मुख जबानी मरीचि जो कुछ आचार कपिल को बताया, वो ही आचार कपिल करता रहा, अब कपिल ने आसुरी नामा शिष्य करा, और भी केई शिष्य करे, उनों को भी कपिल मरीचि की बताई क्रिया आचार मात्र पूर्वोक्त ही बताई, मरीचि प्रथम मरा, कितनेक लच पूर्वो वर्ष पीछे कपिल मर के पांचमें ब्रह्मदेव लोक में देवता हुआ, अवधि ज्ञान से देखा, मैंने पूर्व जन्म में दानादि क्या अनुष्ठान करा, जिस पुण्य से देवता हुआ, तब स्थूल जीवों की हिंसा टालने आदि क्रिया का फल जाना, अब अपने शिष्यों को ग्रंथ ज्ञान से शून्य जान कर उनों के प्रेम से विचारने लगा, ये मेरे शिष्य, मेरी तरह केवल क्रिया, मेरी बताई जानते हैं और कुछ नहीं जानते, मेरा गुरु मरीचि क्रिया तो अपणे मन कल्पित खड़ी करी सो करता भी रहा, मगर उपदेश उसका ऋषभदेव कथित जैन साधुओं जैसा था, जब लिंग क्रिया भिन्न है तो कुछ तत्व ज्ञान में भी भिन्नता करनी चाहिये ऐसा विचार कर कपिल ब्रह्मदेव लोक का देवता आकाश में पंच वर्ण के मंडल में स्थित उन शिष्यों को उपदेश करने लगा, अव्यक्त से व्यक्त प्रगट होता है, इतना वचन अपने गुरु का सुन आसुरी ने ६० तंत्र शास्त्र बनाया उस में लिखा, प्रकृति से महान् होता है, और महान् से अहंकार होता है, अहंकार से १६ गण होता है, उस गण षोडश में से पंच तन्मात्रों से पंचभूत, ऐसे २४ तत्व निवेदन करा, अकर्त्ता विगुण भोक्ता ऐसा पुरुष तत्व नित्य चिद्रुप वह प्रकृति भी नहीं, विकृति भी नहीं, ऐसे २५ तत्व का कथन करा, पीछे इस आसुरी के संतान क्रम से शंख नाम का आचार्य हुआ, उस के नाम से इस मत का नाम सांख्य प्रसिद्ध हुआ, वास्तव में सर्व परिब्राजक संन्यासियों के लिंग, आचारादि मत का

मूल मरीचि हुआ, सांख्य मत का तत्व भगवद्गीता, भागवतादि सांख्य ग्रंथों में प्रचलित है, जैन धर्म बिना सर्व मतों की जड़ इस सांख्य मत से समझनी चाहिये, इस वास्ते ही कपिलदेव को सर्व भगवें कपड़े वाले स्वामी सन्यासी मानते हैं।

अब राजा भरत ने चक्ररत्न का ८ दिन उच्छत्र करा, तब वह चक्र रत्न सहस्र यक्षाविष्टत गगन मार्ग से चला, उसके पीछे सर्व सैन्या से राजा भरत चला, वैताढ्य की दक्षिण श्रेणि तथा उत्तर श्रेणि के ६६ कम ३२ हजार देश ६ खंड को साध के राजा भरत चक्री अयोध्या विनीता पीछा आया, अपणे लघु भाइयों को आज्ञा मनाने दूतों के हाथ लेख भेजा, तब लघु भाइयों ने आपस में सम्मति की, राज्य तो अपणे सबों को अपणा पिता दे गया है तो फिर हम भरत की आज्ञा कैसे माने, चलो पिता से कहें यदि पिता कह देवेंगे के तुम भरत की आज्ञा मानों तो मानेंगे, यदि युद्ध करणा कहेंगे तो युद्ध करेंगे, ऐसा विचार कर ६८ भाई मिल ऋषभदेवजी के पास कैलास पर्वत ऊपर गये, भगवान उनों का मनोगत अभिप्राय सर्व जान के उनों को राज्य लक्ष्मी, गजकर्णवत् चंचल इस राज्य मोहोत्पन्न अकृत्यों से दुर्गति होती है, ऐसा वैताली अध्ययन सुनाया, जो सुयगडांग सूत्र में है, तब ६८ पुत्र वैराग्य पाय दीक्षा ली, सर्व कलह छोड दिया, तदनंतर भरत चक्रवर्ति बाहुबलि से १२ वर्ष युद्ध करा उस में मुष्टि युद्ध में बाहुबलि ने विचार करा, धिक् राज्य को, मेरी मुष्टि का प्रहार से भरत का चूर्ण २ हो जायगा, अपकीर्ति होगी, तुच्छ जीवतव्य राज्यार्थ वृद्ध भ्राता को मार डालना उचित नहीं परंतु मेरी मुष्टि रिक्त भी नहीं जाती, ऐसा विचार पंच मुष्टि लोच करा, मन में गर्व आया, मेरे छोटे भाईयों ने मुझ से प्रथम दीक्षा ली, पुनः केवली भी होगये, इस वास्ते मेरे से वे दीक्षा वृद्ध हैं, नमन वंदन करणा होगा, मैं बड़ा भाई उनों को कैसे प्रथम वंदन करूं, जब मुझे केवल ज्ञान होगा तब ही समवसरण में जाऊंगा, ऐसा विचार वन में खड्गासन कायोत्सर्ग में खड़ा रहा, शीत, उष्ण, भूख, प्यास से १ वर्ष आतापना करी, भगवान् केवल ज्ञान समीप जाण ब्राह्मी, सुंदरी साध्वी को

समझा ने भेजी, वे दोनों आके "बीरा म्हारा गज थकी उतरो, गज चढ्यां केवल न होई रे" ऐसा गायन करने लगी, बाहुबल गायन सुण तत्वार्थ विचारता, पांव उठाया, तत्काल केवल ज्ञान उत्पन्न केवली पर्षदा में समवसरण में प्राप्त हुये ।

वेद और ब्राह्मणों की उत्पत्ति ।

अब चक्रवर्त्ति भरत साम्राट् ९९ भतीजों को अपने चरणों में लगाय निज २ राज्य को भेज दिया, चंद्रयश, तक्षशिला गया, इस के हजारों पुत्रों से चन्द्र वंश चला, अब भरत अपने भाइयों को मनाने निजापकीर्त्ति मिटाने पांच सौ गाडे पक्वान्न के लेकर समवसरण में आया और कहने लगा, मैं अपणे भ्राताओं को भोजन करा, मेरा अपराध क्षमा कराऊंगा । तब भगवान ने कहा, निमित्त करा हुआ सन्मुख लाया हुआ एवं ४२ दोष युक्त आहार लेणा मुनियों के योग्य नहीं, तब भरत बड़ा ही उदास हुआ और कहने लगा उत्तम पात्रों का आहार कल्पित, मैं किस को दूं, तब शक्रेन्द्र ने कहा, हे चक्री, जो तेरे से गुणों में अधिक होय उनों को यह भोजन दो, तब भरत ने विचार करा, मैं तो अव्रत सम्यक् दृष्टिवंत हूं, मेरे से गुणों में अधिक अणुव्रतधर सम्यक्ती श्रावक हैं, तब भरत बहुत गुणवान श्रावकों को यह भोजन कराया और कहा तुम सब प्रतिदिन मेरे यहां ही भोजन करा करो, खेती, वाणिज्यादि कुछ भी मत करा करो, निःकेवल स्वाध्याय करणे में तत्पर रहा करो, और मेरे यहां भोजन कर महलों के द्वार निकटवर्त्ती रहके ऐसा दम २ में उच्चारण कियाकरो "जितोभवान्वर्धतेभयं तस्मान्माहन माहनेति" तब वे श्रावक ऐसा ही करतेहुये, भरतचक्री भोग विलास में मग्न त्रिलक्ष्य वाजित्र वाजते, जब उनों का शब्द सुणता था,

नोट.—(१) इस समय इस वाक्य की नकल श्रीमाली विप्र भोजन समय अन्योक्ति से करते है ।

तब विचारता था, किसने मुझ को जीता है, विचारता है क्रोध (१) मान (२) माया (३) लोभ (४) इन चार कषायों ने मुझे जीता है, उन्हों से ही भय की वृद्धि हो रही है इस वास्ते किसी भी जीव को नहीं हनना, इस वाक्य से भरत को बड़ा वैराग्य होता था, तब इन श्रावकों की भक्ति, तन, मन, धन से चक्रवर्त्ति बहुत ही करने लगा, यह भक्ति देख शहर के सामान्य लोक कम कोश भी उन माहनों में आय मिले। तब रसोइया भरत महाराज से बीनती करी, मैं नहीं जान सकता इनों में कौन तो श्रावक है और कौन नहीं, तब आज्ञा दी, तुम इन की परीक्षा करो, तब सूपकार पूछता है, तुम कोण हो, उनोंने कहा हम श्रावक हैं, तब फेर पूछा श्रावक के व्रत कितने, जिनों ने कह दिया, हमारे ५ अनुव्रत, ३ गुणव्रत, ४ शिक्षाव्रत है, एकेक व्रत के अतिचार सब श्रावक के १२४ होते हैं, २१ गुण श्रावक के बतलादिये, उनों को भरत के पास लाया, भरत ने उनों के गले में कांगणी रत्न से तीन २ रेखा करदी, वह रत्न की तरह दमकने लगी, जैसे दियासलाई जल में भिगा रात को अंग पर घसने से चमकती है, चमड़ी को इजा नहीं होती तैसे जो नहीं बता सके उनों को सूपकार ने कहा तुम पाठशाला में पढ़ के साधुओं के पास १२ व्रतादि धारण करो, भरत के हुक्म से छट्ठे महीने अनुयोग परीक्षा उनों की करते रहे, वे श्रावक माहन जगत् में ब्राह्मण नाम से प्रसिद्ध हुये, वे माहन २ शब्द बेर २ उच्चारण करने से लोक उनों को माहन् माहन् कहने लग गये, जैन धर्म के शास्त्रों में प्राकृत भाषा में उनों को माहन ही लिखा है और संस्कृत में ब्राह्मण बनता है, वह प्राकृत व्याकरण में बंभण और माहन् शब्द के रूपका बनाता है, अनुयोग द्वार सूत्र में बुड्ढसावया महामाहना, याने बड़े श्रावक, माहमाहन, ऐसा लिखा है, इस तरह ब्राह्मणों की उत्पत्ति हुई, जो माहन दीक्षा लीं वह तो साधु होते रहें, अवशेष व्रतधारी श्रावक माहन कहलाये।

भरत ने ब्राह्मणों का सत्कार बढ़ाया, तब दूसरे लोक भी बहुत तरह का दान सन्मान करने लगे, भरत चक्रवर्त्ति ने श्री ऋषभदेवजी के उपदेशानुसार उन ब्राह्मणों के स्वाध्याय के अर्थ श्री आदीश्वर ऋषभदेव की

स्तुति और श्रावक धर्म स्वरूप गर्भित चार आर्य वेद रचे, उनोंका नाम १ संसारदर्शनवेद, २ संस्थापन परामर्शनवेद, ३ तत्त्वावबोधवेद, ४ विद्याप्रबोधवेद, इन चारों में सर्वनय, वस्तु कथन, सोले संस्कार आदि अनेक स्वरूप उनों को पढ़ाये, वह सुविधनाथ अर्हत के शासन तक तो यथार्थ रहा, पीछे तीर्थ विच्छेद हुआ, तद पीछे वह ब्राह्मणाभासों ने धन के लालच से उन वेदों में अपणे स्वार्थ सिद्धि की कई श्रुतियां अपणे महत्व की डाल दी।

पीछे भरतराय ने शत्रुंजय तीर्थ का संघ निकाला, पहला उद्धार कराया, पृथ्वीतल को जिन मंदिरों से अलंकृत करा, अष्टापद पर्वत पर भगवान के उपादेशानुसार आगे होने वाले २३ तीर्थंकरों का वर्ण लंछन देहमान युक्त सिंह निषद्या प्राशाद कराया, एकेक दिशा में चत्तारि, अट्ठ, दस, दोय वंदिया, ऐसे २४ भगवानों की प्रतिमायें स्थापन करी,इस का वर्णन आवश्यक सूत्र में है। भरत ने दंड रत्न से पहाड़ को ऐसा छीला सो कोई भी अपने पांवों के बल ऊपर नहीं चढ़ सके उस के एकेक योजन के फासले पर आठ पगथिये बणादिये, तब से कैलास का अपरनाम अष्टापद प्रसिद्ध हुआ, ऋषभदेव अपणे ९९ पुत्र तथा दश हजार साधु साथ कैलास पर निर्वाण पाये तब से कैलास महादेव का स्थान कहलाया।

भरत चक्री एक दिन सोलह शृंगार पुरुष का धारण कर आदर्श भवन में गया उहां अंगुली की एक मुद्रिका गिरजाने से उसकी अशोभा देख क्रम २ गहना वस्त्र उतार कर देखता है तो विभत्सांग दीखने लगा तब पर पुद्गल की शोभा संसार की अनित्य भावना भाते केवल ज्ञान उत्पन्न भया तब शासन देवता ने यति लिंग लाकर दिया, आप विचरते अनेक भव्यों को उपदेश से तार के मोक्ष प्राप्त भये।

इनों के पट्ट सूर्ययश बैठा, इस ने भी पिता की तरह जिन-गृह से पृथ्वी को शोभित करी, इस का अपर नाम आदित्ययश भी है, इस के हजारों पुत्रों से सूर्य वंश चला, भगवान ऋषभ के कुरु पुत्र से कुरु वंश चला, जिस वंश में कौरव पांडव हुए हैं। सूर्ययश पास कांकणी रत्न नहीं

था, क्योंकि १४ रत्न चक्रवर्त्ती बिना अन्य पास नहीं होता, तब सूर्यशय ने ब्राह्मणोंके गले में स्वर्णमयी,जिनोपवीत,यज्ञोपवीत (जनेऊ) डाली, यज्ञयजन पूजायां वाकी सब बहुमान पितावत् करता रहा, सूर्ययश भी पितावत् मुकुर भवन में केवल ज्ञान पाय मोक्ष गया, इस के पाट महायश बैठा, इस ने चांदी की जिनोपवीत ब्राह्मणों के डाली, पितावत् बहुमान करते रहा, आगे पाटधारियों ने पटसूत्रमय जनेऊ क्रम से सूत्र की डाली गई, आठ पट्ट तक तो आरीसा भवन में केवल ज्ञान पाये, तद पीछे वह भवन खोल डाला।

प्राचीन वेद के बिगड़ने का इतिहास।

अब वेद कैसे अस्तव्यस्त हुआ, सो जैन धर्म के ६३ शलाका पुरुष चरित्र से लिखते हैं। नवमें सुविधनाथ, अर्हत के बाद जैन साधु विच्छेद हो गये, तब लोक इन माहनों को धर्म्म पूछने लगे, तब माहनों ने जिस में अपना लाभ देखा तैसा धर्म बतलाया, और अनेक तरह के ग्रंथ बनाने लगे, धीरे २ जैन धर्म का नाम भी वेद में से निकालना शुरू करा, अन्योक्ति कर के दैत्य, दस्यु, वेदबाह्य, राक्षस, इत्यादि नाम लिख मारा, नास्तिक, पाखंडी इत्यादि शब्दों से जैन साधुओं को कहकर द्वेषी बन गये, वेदों का नाम भी बदल दिया, असली आर्य वेदों के मंत्र कोई २ किसी पुस्तक वेदों में रह गये, वे अभी वेदों में हैं, दक्षिण कर्णाटक जैनबद्री, मूलबद्री, बेलगुल, महेश्वर राज्यांतर्गत देश में जिनों ने आर्यवेद नहीं त्यागा, उन ब्राह्मणों पास आर्य वेदों के मंत्र अभी विद्यमान हैं, जैनागम में लिखा है—गाथा—सिरिभरहचक्कवट्टी, आयरियवेयाणविस्सु उप्पत्ती, माहणपढणत्थमियं, कहियं सुहज्झाणविवहारं। जिण तित्थेवुच्छिन्ने मिच्छत्ते माहणेहिं तेठविआ, अस्संजयाणपूआ, अप्पाणं काहियातेहिं॥

यहां से आगे कितनेक कालांतर से वेदों की रचना हिंसा संयुक्त याज्ञवल्क्य, सुलसा, पिप्पलाद और पर्वत ब्राह्मणादिकों ने विशेषतया रचदी।

बृहदारण्यक उपनिषद् के भाष्य में लिखा है, यज्ञों का कहने वाला सो याज्ञवल्क्य, उस का पुत्र याज्ञवल्क्य, ऐसा लेख ब्राह्मणों के बनाये शास्त्र में भी है इस वाक्य से भी यही प्रतीत होता है कि यज्ञों की रीति प्रायः याज्ञवल्क्य से चली है तथा ब्राह्मण विद्यारण्य सायणाचार्य ने अपने रचित वेदों के भाष्य में लिखा है,याज्ञवल्क्य ने पूर्व की ब्रह्म विद्या का वमन करके सूर्य पास नवीन ब्रह्म विद्या सीख के वेद प्रचलित करा, वह शुक्लयजुर्वेद कहलाया, इस वाक्य से भी यही तात्पर्य निकलता है, याज्ञवल्क्य ने अगले प्राचीन वेद त्याग दिये और नवीन रचे।

जैन धर्म्म के ६३ शलाका पुरुष चरित्र के आठमें पर्व के दूसरे सर्ग में लिखा है, काशपुरी में दो सन्यासिणियां रहती थीं, एक का नाम सुलसा, दूसरी का नाम सुभद्रा था, ये दोनों ही वेद वेदांग की ज्ञाता थीं, इन दोनों ने बहुत वादियों को वाद में जीता, इस अवसर में एक याज्ञवल्क्य परिव्राजक, उन दोनों के साथ वाद करने को आया और आपस में ऐसी प्रतिज्ञा करी कि जो हार जावे वो जीतने वाले की सेवा करे; निदान वाद में याज्ञवल्क्य सुलसा को जीत के अपनी सेवाकारिणी बनाई, सुलसा रात दिन सेवा करने लगी, दोनों योवनवंत थे, कामातुर हो दोनों विषय सेवने लग गये, सत्य तो है अग्नि के पास हविष्य जरूर पिघता है इस में शंका ही क्या, वह तो क्रोड़ों में एक ही नरसिंह, कोई एक ही स्थूल भद्र जैसा निकलता है, जो स्त्री समीप रहते भी शीलवंत रहे, इस लिये ही राजा भर्तृहरि ने शृंगार शतक की आदि में लिखा है, यतः—" शंभुस्वयंभुहरयो हरणेक्षणानां येनाक्रियंत सततं गृहकर्म्मदासाः, वाचामगोचरचरित्रविचित्रताय, तस्मै नमो भगवते कुसुमायुधाय" (अर्थ) उस भगवंत कामदेव को नमस्कार है जिस के नाना आश्चर्यकारी वचन से नहीं कहे जावें, ऐसा चरित्र है जिस में रुद्र, ब्रह्मा, और हरि विष्णु को हिरण जैसे नेत्रों वाली, कान्ताओं ने सदा गृहके काम करनेवाले दास (अनुचर) बना डाला। निदान याज्ञवल्क्य सुलसा काम क्रीड़ा में मग्न, नदी तटस्थ कुटि में वास करते थे; सुलसा के पुत्र

उत्पन्न भया, तद पीछे लोकापवाद के भय से उस जात पुत्र को पीपल वृक्ष के नीचे छोड़ कर दोनों वहां से चल धरे, क्योंकि संतान होना काम क्रीड़ा की पूर्णतया सबूती है, इस वास्ते इय वार्त्ता सुभद्रा ने जाणी, उस बालक के पास आई तो बालक पीपल का फल स्वयमेव जो उस के मुंह में गिरा, उस को चबोल रहा था, तब उस का नाम पिप्पलाद रखा और अपने स्थान लाके यत्न से पाला, वेदादि शास्त्र पढ़ाये, पिप्पलाद बड़ा बुद्धिशाली विदग्ध हुआ, बहुत वादियों का मान मर्दन करने लगा, ये कीर्त्ति सुण याज्ञवल्क्य सुलसा, अज्ञानपणे वाद करने आये सुभद्रा मासी के कहने से दोनों को अपने माता पिता जाना, तब बहुत क्रोध में आया, इन निर्दयों ने मुझे मारणार्थ बन में डाल दिया था, अब इनों से बदला लेना राजसभा में प्रतिज्ञा कराई, और कहा अश्वमेधादिक हे याज्ञवल्क्य, तैंने प्रवर्त्तन करा है, ये यज्ञ में हवन किये जाते हैं जो नाना जंतुगण उन की और कराने वाले की और प्रोहित जो वेद मंत्रोच्चारण करता है, इन तीनों की क्या गति होती है, याज्ञवल्क्य और सुलसा ने कहा तीनों स्वर्ग जाते हैं तब पिप्पलाद बोला, पुत्र का पहला धर्म है कि माता पिता को स्वर्ग पहुंचावे, पशुगण तो अवाच्य कहते नहीं कि मुझे स्वर्ग पहुंचाओ, इस छल को नहीं जानते, याज्ञवल्क्य सुलसा पशुयज्ञ को सिद्ध करने कहा, हां माता मेध पिता मेध भी अगर वेदाज्ञा होय तो कर सकते हैं। तब पिप्पलाद ऐसी श्रुति प्रथम ही बना रखी थी वह ऐसी युक्ति से स्थापन कर के पिप्पलाद ने कहा तूं मेरा पिता है, ये मेरी माता है मैं तुम को स्वर्ग पहुंचाऊंगा, मासी की साक्षी दे दी, पिप्पलाद दोनों को जीते जी अग्नि कुंड में होम दिया, मीमांसक मतका पिप्पलाद मुख्य आचार्य हुआ, इस का बातली नामा शिष्य हुआ, बस जीव हिंसा करणे रूप यज्ञ का बीज यहां से उत्पन्न हुआ, याज्ञवल्क्य के वेद बनाने में कुछ भी शंका नहीं, क्योंकि वेद में लिखा है "याज्ञवल्क्येति होवाच" (याज्ञवल्क्य ऐसा कहता हुआ) तथा आधुनिक वेदों में जो जो शाखा हैं, वे वेदमंत्रकर्त्ता मुनियों के सबब से ही हैं, इस वास्ते जो आवश्यक शास्त्र में लिखा है कि जो जीवहिंसा संयुक्त वेद है वह सुलसा और याज्ञवल्क्यादिकों

ने बनाये हैं सो सत्य है क्योंकि कितनीक उपनिषदों में पिप्पलाद का भी नाम है और और ऋषियों का भी नाम है, जमदग्नि, कश्यप तो वेदों में खुद नाम से लिखा है तो फिर वेदों के नवीन बनने में शंका ही क्या है?

अब तत्पश्चात् इन वेदों की हिंसा का प्रचारक पर्वत नाम का ब्राह्मण हुआ उसका भी कुछ संक्षेप से चरित्र लिखते हैं।

लंका का राजा रावण जब दिग्विजय करने चतुरंगणी सेना युक्त सब देशों के राजाओं को आज्ञा मनाने निकला उस अवसर में नारद मुनि लाठी, सोटे, लात और घूंसों का मारा हुआ पुकारता रावण के पास आया रावण ने नारद को पूछा, तुम को किसने पीटा है, तब नारद कहने लगा हे राजाधिराज, राजपुर नगर में मरुत नाम राजा है, वह मिथ्या दृष्टि है, जो ब्राह्मणाभासों के उपदेश से हिंसक यज्ञ करने लगा है, होम के वास्ते सोनिकों की तरह वे ब्राह्मणाभास अरोट शब्द करते विचारे निरापराधी पशुओं को मारते मैंने देखा तब मैं आकाश से उतर के जहां मरुत राजा ब्राह्मणों के मध्य बैठा है, उसके समीप जाके मैं कहने लगा, हे राजा यह तुम क्या करते हो, तब राजा मरुत बोला, ब्राह्मणों के उपदेशानुसार देवताओं की तृप्ति वास्ते और स्वर्ग वास्ते यह यज्ञ में पशुओं का बलिदान करता हूं, यह महाधर्म है, तब नारद ने कहा, यतः "यूपंच्छित्वा पशून् हत्वा कृत्वारुधिरकर्दमं यद्येवंगम्यतेस्वर्गे नरके केन गम्यते" हे राजा, आर्य वेदों में ईश्वरोक्त यज्ञ क्रिया इस तरह से लिखी है, सो तुम को सुनाता हूं, सो सुनो, आत्मा तो यज्ञ का यष्टा (करनेवाला) तप रूप अग्नि, ज्ञान रूप घृत, कर्म रूप ईंधन, क्रोध, मान, माया, लोभादि पशु सत्य वचन रूप यूप (यज्ञस्तंभ) सर्व जीवों की रक्षा करनी, ये दक्षणा, ज्ञान दर्शन चारित्र रूप त्रिवेदी ऐसा यज्ञ जो योगाभ्यास (मन, वचन, कायावश) युक्त जो करे वह मुक्त रूप हो जाता है और जो राक्षस बन के अश्व, छागादि, मारके यज्ञ करता है वह करने और कराने वाला दोनों घोर नर्क के चिरकालीन दुःख भोगेंगे, हे राजा तूं सुकुलोत्पन्न बुद्धिमान् धनवान् होकर यह अधमाधम व्याधोचित पाप से निवर्त्तन होजा, जो

प्राणि बध से ही जीवों को स्वर्ग मिलता होय तो थोड़े ही दिनों में यह जीव लोक खाली हो जावेगा, और केवल स्वर्ग ही रह जायगा, यह मेरा बचन सुनते ही अग्नि की तरह धमधमायमान ब्राह्मण मेरे को पीटनेलगे, तब में अपना प्राण ले भागता हुआ तेरे पास पहुंचा हूं, हे रावण, बिचारे निरापराधी पशु मारे जाते हैं उनोंकी रक्षा करणे में तूं तत्पर हो तब रावण मरुत राजा के पास गया, मरुत ने रावण की बहुत भक्ति पूजा करी, तब रावण बहुत कोप में आकर मरुत राजा को कहने लगा, अरे नरक का देनेवाला यह हिंसामई चंडाल कर्म यज्ञ क्यों कर रहा है, क्योंकि धर्म तो अहिंसा में है, ऐसा अनंत तीर्थंकरों की आज्ञा है, वही जगत् का हित करणे वाला हैं, अगर नहीं मानेगा तो इस यज्ञ का फल इस भव में तेरे मैं देदूंगा, और परलोक में नर्क में फल मिलेगा, ऐसा सुनते ही मरुत ने यज्ञ छोड़ दिया, क्योंकि उस समय रावण की ऐसी भयंकर आज्ञा थी, इस कथन से यह भी मालूम होता है कि जो ब्राह्मण लोक कहा करते हैं, आगे राक्षस यज्ञ विध्वंस कर देते थे, जैन धर्मी रावणादि राजा ने पशु बध रूप यज्ञ बंध स्थान २ पर करा होगा, तब से ही ब्राह्मणों ने अपने बनाये पुराणों में बलवंत जैनधर्मी राजाओं को राक्षस करकेलिखाहै, कोण जाणे इस रावण के कथानक का यही तात्पर्य ब्राह्मणों नें लिख लिया होगा।

तद पीछे रावण ने नारद को पूछा, ऐसा पापकारी पशु बधात्मक यह यज्ञ कहां से चला, तब नारद कहता है, शुक्तिमती नदी के किनारे ऊपर एक शुक्तिमती नगरी है, उसमें श्री मुनि सुव्रत स्वामी, हरिवंशी तीर्थंकर की संतानों में जब कितनेक राजा होगये, तत्पश्चात् अभिचन्द्र नाम का राजा हुआ, उस अभिचंद्र का पुत्र वसु नाम का है, वो महाबुद्धिमान् सत्यवादी, लोकों में विख्यात हुआ, उस नगरी में उपाध्याय खीरकदंब ब्राह्मण गुणसंपन्न बसता है, उसका पुत्र पर्वत है, उस उपाध्याय पास मैं, पर्वत, वसु तीनों वेदवेदांग पढ़ते थे, एक दिन हम तीनों पाठ करने के श्रम से थके हुए रात्रि को सो गये थे, उपाध्याय जागते थे, उस समय

चारण, श्रमण दो साधु आकाश मार्ग उड़ते परस्पर वार्त्ता करते बोले, खीरकदंब के ३ विद्यार्थियों में से दो नरक जायंगे, एक स्वर्गगामी है। यह मुनि वचन सुन के उपाध्याय चिन्ता करने लगा, मेरे पढ़ाये नरक में जायंगे ये मुझे बड़ा दुःख है, परंतु इनों में से दो नर्क कौन २ जायंगे, इनों की परीक्षा करनी, प्रभात समय गुरु ने, तीन पिष्टमय, कुर्कट बणा इम तीनों को देकर कहा, यत्र कोई भी नहीं देखता होय उस जगह इन को मारना है, तद पीछे वसुराज पुत्र (१) और पर्वत (२) निर्जन वन में जाकर मारलाये। मैं (नारद) नगर से बहुत दूर गया, जहां कोई भी मनुष्य नहीं था, तब मेरे मन में यह तर्क उत्पन्न भई, गुरु महाराज दयाधर्मी है, नहीं मारना ही कहा है, क्योंकि ये कुर्कट मुझे देखता है, और मैं इस को देखता हूं, खेचर लोकपाल, ज्ञानी, इत्यादि सर्व देखते हैं। ऐसा जगत् में कोई भी स्थान नहीं जहां कोई भी न देखता हो। गुरु पूज्य, हिंसा से पराङ्मुख है, निकेवल परीक्षा लेने यह प्रपंच रचा है, तब ऐसा ही गुरु पास चला गया। सर्व वृत्तान्त गुरु को कह सुनाया, गुरु ने मन में निश्चय कर लिया, ऐसा विवेकी नारद ही स्वर्ग जायगा। गुरु ने मुझे छाती से लगार्या, धन्यवाद दिया। गुरु ने पर्वत और वसु का तिरस्कार करा और कहा तुमने कैसे कुर्कट को मारा, नारदोक्त बात कही, हे पापिष्ठो, तुम ने मेरा हाथ ही लजाया, क्या करूं, पानी जैसे रंग के पात्र में गिरता है तद्वत् वर्ण देता है, यही स्वभाव विद्या का है, प्राणों से भी प्यारे पर्वत और वसु, नरक में जायंगे, अब मैं संसार में नहीं रहता, न कुपांत्रों को पढ़ाता, खीरकदंब ने दीक्षा लेली, पिता की जगह पर्वत स्थापन हुआ, व्याख्या करने में पर्वत बड़ा प्रवीण था, मैं भी गुरु की कृपा से सर्व शास्त्रों का विशारद होकर अन्य स्थान में चला गया, अभिचन्द्र राजा ने दीक्षा ली, वसु राजा सिंहासन ऊपर बैठा, वसु राजा को एक सिंहासन ऐसा मिला, जब सूर्य का प्रकाश होता तब स्फटिक के सिंहासन पर बैठा हुआ राजा वसु अधर दीखता। सिंहासन लोकों को नहीं दीख पड़ता था, तब लोकों में ऐसी प्रसिद्धि हो गई, राजा वसु बड़ा सत्यवादी है, सत्य के प्रभाव से देवता इसके सिंहासन को अधर रखते है, राजा भी इस कीर्ति को सत्य रखने, सत्य का ही वर्ताव करने

लगा, तब अनेक राजा इस महिमा से वसु की आज्ञा मानने लगे, सत्य हो या असत्य परंतु लोकों में जो प्रसिद्धि हो जाती है वह वसु राजा की तरह जयप्रद हो जाती है। तत्वगवेषी थोड़े ही बुद्धिमान् मिलते हैं।

नारद कहता है, हे महाराजा रावण! मैं एक दिन शुक्तमति नगरी गया। गुरु के गृह गया, तो आगे पर्वत छात्रों को वेद पढ़ा रहा है, उस में एक ऐसी श्रुति आई, अजैर्यष्टव्यमिति, अब यह श्रुति ऋग्वेद में विद्यमान है, इस का अर्थ पर्वत ने ऐसा करा, अज (बकरा) से यज्ञ करना, तब मैंने पर्वत को कहा, हे भ्राता, यह व्याख्या तूं क्या भ्रान्ति से करता है, गुरु खीरकदंब ने तो इस श्रुति का अर्थ इस मुजब कराया था, (न जायंत इत्यजा) जो बोने से नहीं उत्पन्न होय ऐसें तीन वर्ष के पुराने जौ से हवन करना। ये अर्थ तुमको हमको और वसु को सिखाया था, सो तूं कैसे भूल गया? तैंने करा सो अर्थ गुरुजी ने कभी भी नहीं करा था, तब पर्वत बोला, हे नारद, तूं भूल गया, गुरुजी ने मैंनें करा वोही अर्थ करा था, क्योंकि निघंटु में भी अजा नाम बकरे का ही लिखा है, तब मैंने कहा, शब्दों का अर्थ दो तरह से होता है, एक तो मुख्यार्थ, दूसरा गौणार्थ, इस श्रुति का गुरुजी ने गौणार्थ करा था, हे भ्राता, एक तो गुरु वाक्य, धर्मोपदेष्टा के और दूसरा श्रुति का अर्थ दोनों को अन्यथा करके तूं महापाप उपार्जन मतकर, तब पर्वत ने कहा, गुरु वाक्यार्थ, श्रुत्यर्थ, दोनों तूं विराधता है। मैं तो यथार्थ ही अर्थ कर्त्ता हूं अपना सहाध्याई राजा वसु है। इस को मध्यस्थ करो, जो झूठा होय उस की जिह्वा छेद डालना, तब मैंने इस प्रतिज्ञा को मंतव्य करी, क्योंकि साच को आंच क्या, मैं दूसरों से मिलने गया, अब पीछे से पर्वत की मा ने पुत्र को कहा, हे पर्वत, नारद सच्चा है, मैंने केइ वक्त तेरे पिता के मुंह से इस श्रुति का नारदोक्त ही अर्थ सुणा था, तूं झूठा कदाग्रह मत कर, नारद को बुलाकर घर ही में अपने विस्मृति की क्षमा मांगले, तब पर्वत ने कहा हे माताजी, जो मैं प्रतिज्ञा कर चुका, उस से मैं किसी तरह भी हट नहीं सकता, तब पेट की ज्वाला दुर्निवार्य, अपने पुत्र के दुःख से दुःखणी पर्वत की माता, वसु राजा के पास पहुंची।

राजा वसु गुरणी को आती देख सिंहासन से उठ खड़ा होकर कहने लगा, मैंने आज आप का क्या दर्शन करा, साचात् खीरकदंब का ही दर्शन करा, हे माता, आज्ञा करो वो मैं करूं, और जो मांगो सो देऊं, तब ब्राह्मणी कहने लगी, तू मुझे पुत्र के जीवतव्यरूप भिक्षा दे, पुत्र विना धन, धान्य का क्या करना है, तब राजा वसु कहने लगा, हे माता, पर्वत मेरे पूजने योग्य और पालने योग्य है, क्योंकि गुरुवत् गुरु के पुत्र साथ वर्ताव करना यह श्रुति वाक्य है, तो फिर आज ऐसा यम ने किस को पत्र भेजा है सो मेरे भ्राता पर्वत को मारा चाहता है, तब ब्राह्मणी ने सब वृत्तान्त कह सुनाया, और बोली जो भाई को बचाना है तो अजा शब्द का अर्थ बकरा बकरी करना, क्योंकि महात्मा जन परोपकारार्थ अपना प्राण भी देदेते हैं, तो वचन से परोपकार करने में तो क्या कहना है, तब वसु बोला हे माता, मैं मिथ्या भाषण कैसे करूं, सत्यवादी प्राणांत कष्ट पर भी असत्य नहीं बोलते, तो फिर गुरु का वचन अन्यथा करना, झूंठी साची देना, ये अधर्म मैं कैसे करूं, तब ब्राह्मणी ने कहा यातो मेरे पुत्र के प्राण ही बचेंगे, या तेरे सत्य वृत का आग्रह ही रहेगा, पुत्र के पीछे मैं भी तुझे प्राण की हत्या देउंगी, तब लाचार हो राजा वसुने गुरुणी का वचन माना । तद् पीछे पर्वत की माता प्रमुदित हो घर को आई, वहां बड़े २ पंडित सभा में मिले, अधर सिंहासन राजा वसु सभापति बनकर बैठा, तब अपना २ पक्ष राजा को सुणाया, और मैंने कहा, हे राजा वसु, तू सत्य कहना गुरु ने इस श्रुति का क्या अर्थ करा था, तब बड़े २ पंडित वृद्ध ब्राह्मण कहने लगे, हे राजा, सत्य से मेघ वर्षता है, सत्य से ही देवता सिद्ध होते हैं, सत्य के प्रभाव से ही ये लोक खड़ा है और तू पृथ्वी में सत्य से सूर्य की तरह प्रकाशक है, इस वास्ते तुम को सत्य ही कहना उचित है, इस सुनकर वसु राजा ने सत्य को जलांजलि देकर अजान्मेषान् गुरुर्व्या-ख्यादिति, अर्थात् अजा का अर्थ गुरु ने मेष (बकरा) कहा था, ऐसी साची राजा वसु ने दी, इस असत्य के प्रभाव से व्यंतर देवतों ने स्फटिक सिंहासन को तोड़ वसु राजा को पटक के मारा । वसु राजा मर के सातमी नरक गया, तद् पीछे पिता के पट्ट, राजसिंहासन वसु राजा

के आठ पुत्र पृथुवसु १, चित्रवसु २, वासव ३, शक्र ४, विभावसु ५, विश्ववसु ६, शूर ७, महाशूर ८, ये अनुक्रम गद्दी पर बैठे, उनों आठों को व्यंतर देवतों ने मार दिया, तब सुवसु नाम का नवमा पुत्र उहां से भाग कर नागपुर चला गया और दशमा बृहध्वज नामा पुत्र भागकर मथुरा में चला गया, मथुरा में राज्य करने लगा, इस की संतानों में यदु नाम राजा बहुत प्रसिद्ध हुआ, इस वास्ते हरिवंश का नाम छूट गया, यदुवंश प्रसिद्ध हुआ, जो विद्यमान समय भाटी बजते हैं, यदु राजा के शूर नाम पुत्र हुआ उस शूर के दो पुत्र हुए, बड़ा शौरी, छोटा सुवीर, बाप के पीछे शौरी राजा हुआ, शौरी ने मथुरा का राज्य तो सुवीर को देकर आप कुशावर्त्त देश में अपणे नाम का शौरीपुर नगर वसा के राजधानी बनाई, शौरी का बेटा अंधकवृष्णि आदि पुत्र हुए, अंधकवृष्णि के दश पुत्र हुए १ समुद्रविजय, २ अक्षोभ्य, ३ स्तिमित, ४ सागर, ५ हिमवान, ६ अचल, ७ धरण, ८ पूर्ण, ९ अभिचन्द्र, १० वसुदेव।

उनों में समुद्रविजय का बड़ा बेटा अरिष्टनेमि जो जैनधर्म में २२ में तीर्थंकर हुए, जिस का नाम ब्राह्मण लोक भी दोनों वख्त सन्ध्या करते जपते हैं, शिवताति अरिष्टनेमिः, स्वस्ति वाचन में भी है और वसुदेव के बेटे बड़े प्रतापी कृष्ण वासुदेव जिसको जैनधर्मी ईश्वर कोटि के जीवों में गिनते हैं, दूसरे बलभद्रजी भये।

तथा सुवीर का पुत्र भोजकवृष्णि, भोजकवृष्णि का उग्रसेन, उग्रसेन का पुत्र कंस हुआ, वसुराजा का एक बेटा सुवसु जो भाग के नागपुर गया था, उस का पुत्र बृहद्रथ उसने राज गृह में आकर राज्य करा, उस का बेटा जरासिंधु यह प्रति वासुदेव, यह भी ईश्वर कोटि का जीव था, यह वार्त्ता प्रसंगवश लिखदी है।

अब उहां नगर के लोक और विद्वान् ब्राह्मणों ने पर्वत को धिकार दिया, और कहा, हे असत्यवादी, आप डूबंता पांडिया, ले डूबा यजमान, तेरी झूठी साक्षी में ऐसा प्रतापी राजा वसु को देवतों ने मार दिया, तूं

महापापी, तेरे मुख देखने से ही पाप लगता है, सबों ने मिल के देश से बाहिर निकाल दिया, तब महाकाल असुर, हे रावण, उसका सहायक हुआ।

रावण ने पूछा, महाकाल असुर कौण था? तब नारद कहता है, हे रावण, इहां नजदीक ही चरणायुगल नाम का नगर है, उस में अयोधन नाम राजा था, उसकी दिति नाम की भार्या उन दोनों से सुलसा नाम पुत्री उत्पन्न हुई, रूप लावण्य युक्त योवन प्राप्त हुई, सुलसा का स्वयम्वर पिता ने रचा, सर्व राजाओं को बुलाये, उस राजाओं में सगर राजा अधिक था, उस सगर की मंदोदरी नाम की रणवास की द्वार पालिका, सगर की आज्ञा से प्रतिदिन राजा अयोधन के आवास में जाती थी, एक दिन दिति और सुलसा घर के बाग में कदली गृह में गई, उस अवसर पर मंदोदरी भी उनों के पीछे २ वहां जा पहुंची, माता पुत्री की बात सुनने उहां प्रच्छन्न खड़ी रही, दिति सुलसा को कहती है, हे पुत्री मेरे मन में ये चिन्ता है वह मिटानी तेरे आधीन है, प्रथम श्री ऋषभ स्वामी के भरत और बाहुबली दो पुत्र हुये, भरत का, सूर्य यश जिस से सूर्य बंश चला, बाहुबलि का चंद्रयश, जिस से चंद्रवंश चला, चंद्रवंश में मेरा भाई तृणविंदु हुआ, और सूर्यवंश में तेरा पिता राजा अयोधन है, अयोधन की बहिन सत्ययशा, तृणविंदु की भार्या से मधुपिंगल नामा उत्पन्न मेरा भतीजा है, इस लिए हे बेटी, मैं तुझे उस मधुपिंगल को देना चाहती हूं, तूं न मालुम स्वयंबर में किस राजा को वरेगी, तब सुलसा ने माता का कहना स्वीकार करा, ये वार्त्ता सुण मंदोदरी आकर राजा सगर को सर्व स्वरूप निवेदन करा, तब सगर राजा अपने विश्वभूति पुरोहित जो बड़ा कवि था उस से कहा, उस ने राजों के लक्षणों की संहिता बनाई, उस में सगर के तो शुभ लक्षण लिखा, और मधुपिंगल के अशुभ लक्षण लिखा, उस पुस्तक को संदूक में बंधकर रख छोड़ा, जब सब राजा स्वयंबर में आकर बैठे, तब सगर की आज्ञा से विश्वभूति पंडित वो पुस्तक निकाल कर बोला, जो राज्यचिन्ह रहित राजा इस सभा में होय, उन को याती

मार डालना, या स्वयंवर से निकाल देना, ये वचन सब राजों ने मंतव्य करा, अब वो पंडित यथा यथा पुस्तक बांचता जाता है, तथा तथा मधुपिंगल अपने में अपलक्षण मान, लज्जा पात्र बन स्वयंवर से स्वतः निकल गया, तदनंतर सुलसा ने सगर को वर लिया, अब मधुपिंगल उस अपमान से दुःख गर्भित वैराग्य से बालतप कर के मरा, ६० सहस्र वर्षों की आयु वाला महाकाल नामा असुर तीसरी नरक तक नारकियों को दंड दाता परमाधार्मिक देवता हुआ, अवधि ज्ञान से पूर्व भव देखा, सगर का कपटादि सर्व वृतांत जान विचारने लगा, सगर को किसी तरह पापकर्मी बनाकर मारूं, नरक में आये बाद इस से पूरा बदला लूं, तब छिद्र देखने लगा, उस अवसर में उस ने पर्वत को देखा, तब वृद्ध ब्राह्मण का रूप कर के पर्वत को कहने लगा, हे पर्वत, तू ऐसा दुःखी क्यों, मैं तेरे पिता का मित्र हूं, मेरा नाम शांडिल्य है, हम दोनों गौतम उपाध्याय पास पढ़े थे, मैंने सुणा है कि नारद तथा और लोकों ने तुझे दुःखी करा है, अब मैं तेरा पक्ष करूंगा, मंत्रों से लोकों को विमोहित करूंगा, अब पर्वत से मिल के लोकों को नरक में डालने वास्ते उस असुर ने व्याधि भूतादि ग्रस्त लोकों को करना शुरू करा है, पीछे जो लोक पर्वत के वचन जाल में फंस जाता उनों से हिंसक यज्ञ करा कर आरोग्य कर अपने मत में मिलाने लगा, आखर उस असुर ने राजा सगर की राणियों को, पुत्रों को रोग ग्रासित करा, पर्वत ने सोमादि यज्ञ राजा से कराकर उनों को नीरोग करा। तद पीछे राजा पर्वत का भक्त बना महाकाल की प्रेरणा से पर्वत कहता है, हे राजा, स्वर्ग की कामना से इस मुजब कृत्य कर सौत्रामणि यज्ञ कर मद्य पान करने में दोष नहीं, गोसव यज्ञ में अगम्य स्त्री (चांडाली) तथा माता, बहिन, बेटी आदि से विषय सेवन करने में दोष नहीं, मातृमेध में माता का, पितृ मेध में पिता का, वध अन्तर्वेदी कुरुक्षेत्रादि में करे तो दोष नहीं, तथा काछवे की पीठ पर अग्नि स्थापन कर तर्पण करे, यदि कछुवा नहीं मिले तो शुद्ध ब्राह्मण की खोपरी पर अग्नि स्थापन कर होम करना, क्योंकि खोपरी भी कछुए सदृश ही होती है यह वेदों की आज्ञा है इस में हिंसा नहीं है, वेदों में लिखा है—

यतः सर्वं पुरुषैववेदं यद्भूतंयद्भविष्यति ।
ईशानोयंमृतत्वस्य यदन्नेनातिरोहति ॥ १ ॥

अर्थात् जो कुछ है सो सब ब्रह्म रूप ही है, जब एक ब्रह्म हुआ तो कौन किस को मारता है, इस वास्ते यथा रुचि यज्ञों में पशु आदि हवन कर उनों का मांस खाओ, इस में कुछ दोष नहीं, क्योंकि देवोद्देश्य करने से मांस पवित्र हो जाता है, ऐसे उपदेश देकर सगर राजा से अंतर्वेदी कुरुक्षेत्रादि में पर्वत यज्ञ कराता हुआ, और जो जीवों को पर्वत यज्ञों में मरवाता उनों को वह महाकाल असुर देव माया से विमानों में बैठाया हुआ स्वर्ग को जाते दिखाता, जब लोकों को प्रतीति आगई, तब निःशंक होकर जीव बधरूप यज्ञ करने लगे, राजसूयादिक यज्ञ में घोड़े को उसके संग अनेक जीवों का बध होने लगा, ऐसे अघोर पापों से सगर और सुलसा मर नर्क को प्राप्त हुए, तब महाकाल असुर ने मारण, ताडन, छेदन भेदनादिक से अपणा वैर लिया, हे राजा रावण, पर्वत पापी से यह जीव हिंसा यज्ञ के वाहने विशेषतया प्रवर्तन हुआ, जिसको आपने इस अवसर पर बंध करा, तब रावण नारद को प्रणाम कर विदा करा, इस तरह जैनशास्त्रों में वेद की उत्पत्ति लिखी है, सो आवश्यक सूत्र आचार दिनकर तेसठ शाला का पुरुष चरित्रादि से इहां लिखा है ।

नवीन वेदों की उत्पत्ति ।

इस वर्त्तमान काल में जो चारों वेद हैं, इनों की उत्पत्ति डाक्तर मोक्षमूलर साहब, पश्चिमी विद्वान् अपणे बनाये संस्कृत साहित्य ग्रंथ में ऐसा लिखते हैं कि वेदों में दो भाग हैं, एक तो छंदो भाग, दूसरा मंत्र भाग, तिन में से छंद भाग में ऐसा कथन है जैसे अज्ञानी के मुख से अकस्मात् बचन निकला हो, इस भाग की उत्पत्ति इकतीस से वर्षों से हुई है, और मंत्र भाग को बने गुनतीस सौ

वर्ष हुए हैं, इस लिखने में क्या आश्चर्य है, जो किसी ने उलट पुलट के नवीन बनादिये हों, इन वेदों पर उह्नट, सायण, रावण, महीधर और शंकराचार्यादिकों ने भाष्य बनाये हैं, टीका, दीपिका रची हैं, अब उस प्राचीन भाष्य दीपिका को अयथार्थ जान के दयानन्द सरस्वती स्वामी अपने मत के अनुसार नवीन भाष्य विक्रम १६३२ संवत् के पीछे बनाया है परन्तु सनातन नाम धराने वाले ब्राह्मण पंडित दयानन्दजी के भाष्य को प्रमाणिक नहीं मानते हैं, परन्तु अंग्रेजी पढे चारों वर्ण के लोक अगले वेद मत से तथा चारों संप्रदाइयों के मत से घृणा कर समाज की वृद्धि करते जाते हैं, और जैनधर्मी तो जब से प्राचीन वेद बिगाड़े गये उस दिन से ही कल्पित वेद को ईश्वरोक्त नहीं होने से छोड़ दिया है।

जब भगवान ऋषभदेवजी का निर्वाण कैलास पर्वत पर हुआ, तब सब देवतों के संग ६४ ही इंद्र, निर्वाण महिमा करने को आये, उन सब देवता में से अग्नि कुमार देवता ने भगवान की चिता में अग्नि लगाई, तब से ये श्रुति लोकों में प्रसिद्ध हुई, "अग्नि मुखावैदेवाः" अर्थात् अग्नि कुमार देवताओं में मुख्य है, और अल्प बुद्धियों ने तो यह श्रुति का अर्थ ऐसा बना लिया है, अग्नि जो है सो तेतीस क्रोड़ देवताओं का मुख है, यह प्रभु का निर्वाण स्वरूप जंबुद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र आवश्यक सूत्र से जान लेना।

जब देवताओं ने ऋषभदेवजी के दाढ, दंत लिये, तब श्रावक ब्राह्मण देवताओं से याचना करते हुये, तब देवता इनों को याचक याचक कहने लगे, देवतों ने कहा तुम चिताग्नि लेजाओ, तब ब्राह्मण चिताग्नि अपने घर लेगये, उस को यत्न से वृद्धि करते रहे तब से ब्राह्मणों का नाम, "आहिताग्नयः" पड़ा, यही आतसपरस्ती पारस देशमे प्रचलित रहनेके कारण पारसी जाति अभी अग्नि को पूजते हैं और नित्य निज गृह में रखते हैं, परशुराम ने ७ वेर फिर फिर के निक्षत्रणी पृथ्वी करी उस समय भय

नोट.—(१) यह भाष्यकर्त्ता रावण नाम का ब्राह्मण था, नहिं लंकापति रावण ने नहीं बनाया है।

से क्षत्री लोक व्यापारी बन गये, वे किराड़ खत्री बजते हैं, तद पीछे सुभूम चक्रवर्त्ती राजपूत परशुराम को मार २१ बेर निब्राह्मणी पृथ्वी करी उस भय से अगत के बहुत ब्राह्मण सुनार आदि हो गये, ४ वर्ण का कृत्य करने लगे तथा लाखों पारस देश में जा बसे वे पारसी बजने लगे, अग्नि पूजना, जनेऊ छिपी हुई कमर में जब से ही रखते हैं ऐसा स्यात् है। अस्थि चुगणे का व्यवहार देवतों की तरह लोक भी करने लगे, दूसरे दिन चिता शीतल होने से ब्राह्मण श्रावकों ने चिता की भस्मी थोड़ी २ सबों को दी, और अपने मस्तक पर त्रिपुंडाकार लगाई, तब से त्रिपुंड लगाना शुरू हुआ, संध्या करते ब्राह्मण भस्मी उस दिन से लगाते हैं। ऋषभदेवजी को बालपने में इक्षु खाने की इच्छा हुई और प्रथम वर्षोपवासी का पारख भी इक्षुरस से ही हुआ, प्रभु को मिष्ट इष्ट होने से सारी प्रजा ने गुड़ को सर्व कार्य में मंगलीक माना, दीक्षा लेते इंद्र की प्रार्थना से शिखा के बाल नहीं लोचे, तब से ही आर्य लोक शिखा मस्तक पर रखना प्रारम्भ करा।

भरत चक्रवर्त्ति के सूर्ययश, महायश, अतिबल, महाबल, तेजवीर्य, कीर्त्तिवीर्य और दंडवीर्य एवं आठ पाट तक ३ खंड में राज्य करते रहे, दंडवीर्य सेत्रुंजय तीर्थ का भरत की तरह दूसरा उद्धार कराया, असंख्य पाटधारी हुये, सब कोई मुक्ति, कोई सर्वार्थ सिद्ध विमान में गये, इन असंख्य पाटों की व्यवस्था चितांतर गंडिका में लिखा है, तद पीछे जित-शत्रु राजा हुये। इति संक्षेपतः ऋषभाधिकार संपूर्णम्।

अथ अजितनाथ २ तीर्थंकर का संक्षेप स्वरूप लिखते हैं, अयोध्या नगरी में जितशत्रु इक्ष्वाकु वंशी राजा राज्य करता है, जिसका मूल नाम विनीता है, यह अयोध्या पीछे बसी है, इस में राम लक्ष्मण का जन्म हुआ है, जितशत्रु राजा का छोटा भाई सुमित्र युवराज था, जितशत्रु की विजया देवी राणी थी, उन दोनों के १४ स्वप्न सूचित अजितनाथ नाम का पुत्र हुआ, और सुमित्र की यशोमती राणी के भी १४ स्वप्न सूचित, सगर नाम का पुत्र हुआ, जब दोनों पुत्र योवनवंत हुए तब जितशत्रु राजा और सुमित्र

दीक्षा ले मोक्ष गये। अजितनाथ राजा हुए, और सगर युवराज हुआ, बहुत पूर्व लाख वर्षों तक राज्य कर अजित स्वामी स्वयं दीक्षा ली केवल ज्ञान पाय दूसरे तीर्थंकर हुए, पीछे सगर राजा हुआ, तद पीछे चक्रवर्त्ती हुआ, षट् खंड का राज्य करा, जन्हुकुमार प्रमुख ६० हज़ार पुत्र हुए, उनों ने दंडरत्न से गंगा नदी को अपने असली प्रवाह से फिरा के कैलास के गिरदनवाह खाई खोद के उस खाई में गंगा को लाके डाला, क्योंकि उनों ने विचार करा, हमारे बड़े पुरुषा भरत चक्री ने जो इस पर्वत पर सुवर्ण रत्नमय २४ तीर्थंकरों का सिंह निषद्या प्रासाद कराया उसको क्षती न हो, उस के रक्षार्थ गंगा नदी का प्रवाह खाई में फेरदिया, वह जल नाग कुमार देवतों के भवन में प्रवेश करने से उनों ने ६० हजार पुत्रों को मार डाले, तदनंतर गंगा के जल ने देश में बड़ा भारी उपद्रव करा, तब सगर का पोता जन्हु कुमार का पुत्र भगीरथ ने सगर की आज्ञा से दंडरत्न से पृथ्वी को खोद के गंगा को पूर्व समुद्र में जा मिलाई, इस वास्ते गंगा का नाम जाह्नवी भागीरथी कहा जाता है, सगर चक्री ने शत्रुंजय का तीसरा उद्धार कराया, अन्य भी जिन मंदिरों का जीर्णोद्धार कराया, तथा यह समुद्र भी जो खाड़ी बजती है, सो भरत क्षेत्र में देवता के सहाय से सगर ही जगती के बाहिर के समुद्र में से लाया है, लंका के टापू में वैताढ्य पर्वत के वासिंदे घन वाहन को अपणी आज्ञा से सगर ने प्रथम राजा स्थापन करा, लंका के टापू का नाम राक्षस द्वीप है, घन वाहन के वंश वाले राक्षस कहलाये, इस वैताढ्य पर्वत के राजाओं में कतिपय काल के पश्चात् इंद्र तुल्य साम्राज्य कर्त्ता इंद्र राजा हुआ, उसने राक्षसद्वीप छीन लिया, तब राक्षस वंशी राजा भाग के पाताल लंका में जा बसे, तद पीछे रत्नश्रवा के ३ पुत्र रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण इंद्र को मार, लंका पीछी ले ली, सगर चक्रवर्त्ति का विस्तार चरित्र तेसठ शला का पुरुष चरित्र से जान लेना, वह ३२ हजार काव्य बंध है। सगर अजितनाथजी पास दीक्षा ले केवल ज्ञान पाकर मोक्ष गया, अजितनाथजी भी सम्मेत शिखर पर्वत पर मुक्ति पहुंचे, ऋषभदेव स्वामी के निर्वाण पीछे ५० लाख कोड़ी सागरोपम के व्यतीत होने से अजित स्वामी का निर्वाण हुआ, उनों के निर्वाण पीछे ३० लाख कोड़ी सागरोपम वर्ष

व्यतीत होने से श्रीशम्भवनाथजी तीसरे तीर्थंकर हुए, राज्य सर्व सूर्यवंशी चन्द्रवंशी कुरुवंशी आदिक राजों के घराने में रहा। इति अजित तीर्थंकर सगर चक्रवर्त्ती का संक्षेप अधिकार संपूर्ण।

अब श्रावस्ती नगरी में इक्ष्वाकु वंशी जितारि राजा राज्य करता था। उस के सेना नामे पटराणी, उनों का शंभव नामा पुत्र तीसरा तीर्थंकर हुआ, इनों का विस्तार चरित्र त्रेषष्टि शालाका पुरुष चरित्र से जाण लेना इति।

तद् पीछे कितना ही काल के अनंतर अयोध्या नगरी में इक्ष्वाकु वंशी संबर राजा की सिद्धार्था नामक राणी से अभिनंदन नाम का चौथा तीर्थंकर हुआ, तदनंतर अयोध्या नगरी में इक्ष्वाकु वंशी मेघ राजा की सुमंगला राणी उनों का पुत्र सुमतिनाथ नाम का पांचमा तीर्थंकर हुआ, तद्-पीछे कितना काल व्यतीत होने से कोशंबी नगरी में, इक्ष्वाकु वंशी श्रीधर राजा की सुसीमा राणी से पद्मप्रभ नाम का छट्ठा तीर्थंकर उत्पन्न हुआ। तद् पीछे कितना हीं काल व्यतीत होने से वाराणसी नगरी में इक्ष्वाकु वंशी प्रतिष्ठ राजा की पृथ्वी नामा राणी से सुपार्श्वनाथ नाम का सातमा तीर्थंकर उत्पन्न हुआ, तद् पीछे कितना ही काल व्यतीत होने से चंद्रपुरी नगरी में इक्ष्वाकु वंशी महासेन राजा की लक्ष्मणा नाम राणी से चंद्रप्रभ नाम का आठमां तीर्थंकर उत्पन्न हुआ। तद् पीछे कितना काल व्यतीत होने से कांकड़ी नगरी में इक्ष्वाकुवंशी सुग्रीव राजा की रामा नामक राणी से सुविधिनाथ नामका अपरनाम पुष्पदंत नवमां तीर्थंकर उत्पन्न हुआ।

यहां पर्यंत तो राजा प्रजा संपूर्ण जैन धर्म पालते थे और सर्व ब्राह्मण जैन धर्मी श्रावक और चार प्राचीन वेदों के पढने वाले बने रहे। जब नवमें तीर्थंकर का तीर्थ व्यवच्छेद होगया तब से ब्राह्मण मिथ्यादृष्टि और जैन धर्म के द्वेषी और सर्व जगत के पूज्य, कन्या, भूमि, गौ, दानादिक के लेने वाले जगत में उत्तम और सर्व के हर्त्ता कर्त्ता, मतों के मालक बनने को,

कई एक ग्रन्थ बनाये क्योंकि सूना घर देख के कुत्ता भी आटा खाजाता है। शनैः २ नदी देव, पहाड देव, वृक्ष देव, ब्रह्मा देव, रुद्र देव, इंद्र देव, विष्णु देव, गणेश देव, शालग देव इत्यादि अनेक पाखंडों की स्थापना करते चले उन सबों में अपनी स्वार्थ सिद्धि का बीज बोते रहे और भी जो वाममार्ग होली प्रमुख जितने कुमार्ग प्रचलित हुए हैं वे सब इन्हों ही ने चलाया है मानों आदीश्वर भगवान की प्रचलित की हुई अमृत रूप सृष्टि के प्रवाह में जहर डालने वाले हुये क्योंकि आगे तो जैन धर्म और कपिल मत के विना और कोई भी मत नहीं था। कपिल के मतावलंम्बी भी श्री आदीश्वर ऋषभदेवजी को ही देव मानते रहे। यह असंयतियों की पूजा होनी इस हुंडा अवसर्प्पिणी में जैन धर्म के शास्त्रों में १० आश्चर्यों में आश्चर्य माना है।

तिस पीछे भद्दिलपुर नगर के इक्ष्वाकु वंशी दृढरथ राजा की नंदा नामा राणी उन्हों का पुत्र श्री शीतलनाथ नाम का दसवां तीर्थंकर हुआ इन्हों के समय हरिवंश कुल की उत्पत्ति हुई वह वृत्तांत लिखते हैं—

कोशांबी नगरी में बीरा नाम का कोली रहताथा। उसकी अति-रूपवती वनमाला नामा स्त्री थी, उसको उस नगर के नृप ने अपने अंतेउर में डाल ली। बीरा कोली उस स्त्री के विरह में ग्रथिल हो हा! वनमाला, हा! वनमाला, ऐसा उच्चारण कर्त्ता नगर में घूमने लगा, एकदा वर्षाकाल में राजा वनमाला के साथ अपने गौख में बैठा था। दोनों ने ऐसी अवस्था बीरे की देख बडा पश्चात्ताप किया और विचारने लगे, हमने बहुत निकृष्ट कृत्य किया, इतने में अकस्मात् दोनों पर विद्युत्पात हुआ। राजा और वन-माला शुभ ध्यान से मरके हरिवास क्षेत्र में युगलपणे उत्पन्न भये। बीरा कोली दोनों को मरा सुन के अच्छा होकर तापस बन अज्ञान तपकर किल्विष देवता मर के हुआ। अवधि ज्ञान से उन दोनों को युगलिये पणे में देख विचार करने लगा, ये दोनों भद्रक परिणामी अल्पारंभी हैं, इस वास्ते मर के देवता होवेंगे तो फिर मैं अपना वैर किस तरह लूंगा ऐसा करूं कि जिस से ये मर के नर्क जावें। अब उन दोनों को वहां से उठाया उस

अवसर में चंपा नगरी का इच्वाकु वंशी चन्द्रकीर्त्ति राजा बिना पुत्र मरा था। लोक चिंता करते थे कि यहां राजा किसको करना। उन लोकों को लेजा के देव ने सौंपा और कहा ये हरि नाम का तुम्हारा राजा हुआ और ये हरिणी नाम की राणी हुई। वह देव देवकुरु उत्तरकुरु क्षेत्र से उन राज्य वर्गी लोकों कूं कल्प वृक्ष का फल ला देता है और कहता है इन फलों में मांस मिश्रित कर इन दोनों को खिलाया करो। इन्हों से आखेट (शिकार) कराया करो, तब लोकों ने वैसा ही किया, उन्हों की ओलाद हरिवंशी कहलाये वह दोनों मर पाप के प्रभाव से नरक गये। इसके पीछे कई एक राजन्यवंशी मांस भक्षक हुये। इस वंश में वसु राजा हुआ। शीतलनाथ स्वामी निर्वाण पाये बाद तीर्थ विच्छेद गया। इस तरह पनर में धर्मनाथ स्वामी तक शाशन तीर्थ विच्छेद होता रहा, और माहन लोकों का मिथ्यात्व बढ गया, अनेक मठ मंडपादिक बन गये।

तद पीछे सिंहपुरी नगरी में इच्वाकु वंशी विष्णु नाम राजा उनकी विष्णु श्री नाम की राणी से श्रेयांसनाथ नाम के ग्यारवां तीर्थंकर उत्पन्न हुआ। इन्हों के विद्यमान समय में वैताढ्य नाम पर्वत से श्रीकंठ नामा विद्याधर के पुत्र ने पद्मोत्तर विद्याधर की बेटी को अपहरण कर अपने बहनोई राक्षसवंशी लंका का राजा कीर्त्तिधवल की शरण गया। तब कीर्त्तिधवल ने तीन सौ योजन प्रमाण वानर द्वीप उनके रहने को दिया। उस श्रीकंठ की सन्तानों में चित्र, विचित्र नाम के विद्याधरों ने विद्या के प्रभाव से बंदर का रूप बनाया तब वानर द्वीप के रहने से और वानर रूप बनाने से वानरवंशी प्रसिद्ध हुये। मनुष्य जैसे मनुष्य थे, न राक्षस द्वीप वाले कोई अन्याकृति के थे, वानर द्वीप वाले विद्या से अद्भुत रूप बनालेना विद्याधरों का कृत्य था, इन्हीं के ही संतान परम्परा में वाली, सुग्रीव, हनुमान, नल, नील जामवंतादि हुये हैं।

श्रेयांसनाथ के समय में पहिला त्रिपृष्ट नाम का वासुदेव मरीचि का जीव हरिवंश में हुआ। पोतनपुर नगर में हरिवंशी जितशत्रु नामा राजा

हुआ, उसकी धारणी राणी उसके अचल नामा पुत्र और मृगावती नाम पुत्री थी। अत्यन्त रूपवान् यौवनवती को देखके उसके बाप जितशत्रु ने मृगावती को अपनी भार्या बनाली, तब लोकों ने राजा जितशत्रु का नाम प्रजापति रखा अर्थात् अपनी पुत्री का पति तब वेदों में ब्राह्मणों ने यह श्रुति बना के डाली—

प्रजापतिर्वैस्वांदुहितरमभ्य ध्यायद्दिव नित्यन्य आहु-
पुरस मित्यन्येतास्मृश्यो भूत्वा तदसावादित्योऽभवत् ॥

इसका परमार्थ ऐसा है, प्रजापति ब्रह्मा अपनी बेटी से विषय सेवने को प्राप्त होता हुआ। जैन धर्मवालों के तो इस अर्थ से कुछ हानि नहीं है परंतु जिन लोकों ने ब्रह्माजी को वेदकर्त्ता हिरण्यगर्भ के नाम से ईश्वर माना है और फिर ऐसी कथा पुराणों में लिखी हैं उसका फजीता तो जरूर दूसरे धर्म वाले करें होंगे क्योंकि जो पुरुष अपने हाथ से अपने ही पांवों पर कुल्हाड़ी मारे तो फिर वेदना भी वही भोगे, अपने हाथ से जो अपना मुंह काला करे उसको जरूर देखने वाले हंसे होंगे। यद्यपि मीमांसा के वार्तिककार कुमारिल भट्ट ने इस श्रुति के अर्थ का कलंक दूर करने को मनमानी कल्पना करी है तथा इस काल में स्वामी दयानन्दजी ने भी वेद श्रुतियों के कलंक दूर करने को अपने बनाये भाष्य में खूब अर्थों के जोड़ तोड़ लगाये हैं परन्तु जो भागवतादि पुराणों में कथानक लिखी है उसको क्योंकर छिपायेंगे—

दोहा–गहली पहली क्यों नहीं समझी, मैंहदी का रंग कहां गया।
वह तो प्रेम नहीं अब सुन्दर, वह पानी मुल्तान गया ॥

जैनधर्म वाले तो वेद की श्रुति और ब्रह्मा (प्रजापति) का अर्थ यथार्थ ही किया है जो यथार्थ हुआ सो लिखा है। उस मृगावती के कूख से त्रिपृष्ट नाम का प्रथम वासुदेव जन्मा। अचल बलदेव माता धारणी थी दोनों जब यौवनवंत हुये तब अश्वग्रीव प्रति वासुदेव को युद्ध में मार कर पहिला नारायण हुआ।

कितना काल व्यतीत होने से चंपापुरी में इक्ष्वाकुवंशी वसु पूज्य राजा उसकी जया नाम राणी से वासुपूज्य नाम का १२मां तीर्थंकर उत्पन्न हुआ। इन्हों के वारे में द्विपृष्ट वासुदेव और विजय बलदेव तारक प्रति वासुदेव को मारके दूसरा नारायण ३ खंड का भोक्ता हुआ।

तदनन्तर कितना काल व्यतीत होने से कंपिलपुर नगरमें इक्ष्वाकुवंशी कृतवर्म नाम राजा उसकी श्यामा नाम राणी से श्री विमलनाथ नाम का तेरहवां तीर्थंकर उत्पन्न हुआ, इन के वारे में तीसरा स्वयंभु वासुदेव, भद्र बलदेव, मैरक नाम प्रति वासुदेव को युद्ध में मार के ३ खंड का राज्याधिपति नारायण हुआ।

तदनंतर अयोध्या विनीता नगरी में इक्ष्वाकुवंशी सिंहसेन राजा, उन की सुयशा नाम राणी से चौदहवां अनंतनाथ तीर्थंकर उत्पन्न हुआ, जिस को अन्य तीर्थी भी देव मानकर अनंत चौदस करते हैं। उन के वारे में पुरुषोत्तम चौथा वासुदेव, सुप्रभ बलदेव, मधुकैटभ प्रति वासुदेव को युद्ध में मार कर ३ खंडाधिपति नारायण हुआ।

तदपीछे रत्नपुरी नगरी में इक्ष्वाकुवंशी, भानु नाम राजा, उस की सुव्रता नाम राणी से श्रीधर्मनाथ नाम का पनरमा तीर्थंकर उत्पन्न हुआ, उस के वारे में पांचवां पुरुष सिंह वासुदेव और सुदर्शन बलदेव तथा निशुंभ नाम प्रति वासुदेव को मार के त्रिखंडाधिपति नारायण हुआ, जिस को नरसिंह अवतार अन्यतीर्थी कहते हैं, इय पांचों ही नारायण बलदेव प्रति व सुदेव १५ जीव जिनधर्मी अरिहंतों के भक्त थे।

अब १५में तीर्थंकर और १६में तीर्थंकरों के मध्य में तीसरा मघवा नामा और चौथा सनत्कुमार नामा ये दो चक्रवर्त्ती ६ खंड के भोक्ता साम्राट् हुए, ये भी अरिहंतों के भक्त जिनधर्मी थे।

तदनंतर हस्तिनापुरी नगरी में कुरुवंशी विश्वसेन राजा उसकी अचिरा

रणी से १६में शान्तिनाथ तीर्थंकर हुये, जो पहिले गृहवास में तो ५में चक्रवर्त्ति हुये, दीक्षा लेकर तीर्थंकर हुए।

तिस पीछे हस्तिनापुर नगर में कुरुवंशी सूरनाम राजा उनकी श्रीराणी उनों का पुत्र कुंथुनाथ नामा गृहवास में तो छट्ठे चक्रवर्त्ति हुए, दीक्षा ले १७में तीर्थंकर हुए।

तिस पीछे हस्तिनापुर में कुरुवंशी सुदर्शन नाम राजा, उन के देवी राणी से अरनाथ पुत्र गृहवास में तो सातमें चक्रवर्त्ति हुए, दीक्षा ले अठारवें तीर्थंकर हुए।

अठारमें और उगणीसमें तीर्थंकर के मध्य में सुभूम नाम का आठमां चक्रवर्त्ति हुआ, इस के समय में ही परशुराम हुआ, इन दोनों का वृत्तान्त जैनशास्त्रोक्त लिखता हूं, यह कथा योग शास्त्र में ऐसे लिखी है—

वसंतपुर नाम नगर में जिसका कोई भी संबंधी नहीं ऐसा उच्छिन्न वंशी अग्निक नाम का एक लड़का था, वह सथवारे के साथ किसी देशांतर को जाता साथ भूल के किसी तापस के आश्रम में गया, तब कुलपति ने अपने पुत्रवत् रक्खा, उहां उस अग्निक ने बड़ा घोर तप करा, और बडा तेजस्वी हुआ, तब यमदग्नि तापसों में नाम से प्रसिद्ध हुआ, इस अवसर में एक जैनधर्मी, विश्वानर नाम का देवता और दूसरा तापसों का भक्त धन्वंतरि नाम का देवता, ये दोनों देव परस्पर में विवाद करने लगे, उस में विश्वानर तो कहता है, अर्हत का कहा धर्म प्रामाणिक है, और धन्वंतरी कहता है तापसों का धर्म प्रामाणिक है तब विश्वानर ने कहा, दोनों धर्म के गुरुओं की परीक्षा करलो, जिसमें जैनधर्म में तो जो जघन्य गुरु होय उसकी धैर्यता देखलो, तापस धर्मवालों में उत्कृष्ट से उत्कृष्ट की। उस अवसर में मिथिला नगरी का पद्मरथ राजा नया ही जिन धर्मी हो कर भावयति हुआ था, वह चंपा नगरी गुरु पास दीक्षा लेने जाता था, उसको उन दोनों देवतों ने देखा तब रास्ते में दुःख देने वाले करड़े कंकर

बना दिये, रास्ते के चारों गिरद बहुत कीड़े आदि जीव हर जगे बना दिये, तब राजा जीव दया के भाव से कमल जैसे सुकुमार नंगे पांवों से उन कंटक जैसे कंकरों पर ही चल रहा है, पांवों में से रुधिर की शिरायें चल रही है, तो भी जीवाकुल भूमि पर नहीं गया, तब देवता ने नाटक और गायन प्रारम्भ करा, तो भी वो राजा क्षोभायमान नहीं हुआ, तब दोनों देवता सिद्ध पुत्रों का रूप करके कहा, हे राजा, अभी तेरी आयु बहुत है, भोग विलास कर, अंत अवस्था में दीक्षा लेना, तब राजा बोला, जो मेरी आयु लंबी है तो बहुत चारित्र धर्म पालूंगा, योवन में इंद्रियों को जीतना है, वही पूरा तप है, तब देवताओं ने बिचारा यह डिगने वाला नहीं है, तदनंतर वे दोनों देव सर्व से उत्कृष्ट यमदग्नि तापस के पास आये, जिसकी जटा वड़वृक्ष के वड़वाई की तरह पृथ्वी में संलग्न हो रही है, पावों के पास पृथ्वी में सर्पों की बिंबिया पड़ रही है, ऐसा तपेश्वरी देख परिक्षा करने दोनों देवता चिड़ा चिड़ी का रूप रच कर यमदग्नि की दाढ़ी में घोसला बनाके बैठ गये, पीछे चिड़ा चिड़ी से कहने लगा, मैं हिमवंत पर्वत जाऊंगा, तब चिड़ी कहने लगी, मैं तुझे कभी नहीं जाने दूंगी, क्योंकि तूं उहां जाकर और चिड़ी से आसक्त हो जायगा, पीछे मेरा क्या हाल होगा, तब चिड़ा कहने लगा, जो मैं पीछा नहीं आऊं तो मुझे गौ घात का पाप लगे, तब चिड़ी कहती है, ऐसी शपथ मैं नहीं मानती, मैं कहूं सो शपथ करे तो जाने दूंगी, तब चिड़ा बोला कहदे, तब चिड़ी कहती है कि जो तूं किसी चिड़ी से यारी करे तो इस यमदग्नि को जो पाप है सो तुझ को लगे चिड़ा चिड़ी का ऐसा वचन सुन यमदग्नि क्रोधातुर हो चिड़ा चिड़ी दोनों को हाथों से पकड लिया और कहने लगा मैं सब पापों का नाश करने वाला दुष्कर तपकर्त्ता हूं तो फिर ऐसा कौनसा पाप शेष रह गया जिससे तुम मुझे पापी बतलाते हो। तब चिड़ी कहती है, हे ऋषि, तेरा सब तप निष्फल है, तुम्हारे शास्त्रों में लिखा है अपुत्रस्यगतिर्नास्ति स्वर्गनैवच २ याने पुत्र विना गति नहीं है, तो जिसकी गति शुभ नहीं होय उससे अधिक पाप फिर कौन होगा, तब यमदग्नि चित्त में विचारने लगा, हमारे शास्त्रों में यह बात लिखी तो है जहांतक स्त्री और पुत्र नहीं

तहांतक सर्व तप पानी के प्रवाह में मूत ने जैसा है, चिड़ा चिड़ी को छोड़ दिया, स्त्री की वांछा उत्पन्न हुई यह स्वरूप देख धन्वंतरि देवता अर्हंत भक्त होगया, दोनों अदृश्य होगये। यमदग्नि वहां से उठके नेमि कोष्टक नगर में पहुंचा, वहां का राजा जितशत्रु उसके बहुत बेटियां थीं उसके पास पहुंचा, राजा उठ खड़ा हुआ, हाथ जोड़ आने का कारण पूछा, तब यमदग्नि ने कहा मैं तेरी एक कन्या याचने आया हूं तब राजा ने कहा मेरे १०० पुत्रियां है उनमें से जो आपको वांछे उसको आप लेलो तब यमदग्नि कन्या के महलों में गया और कहने लगा जिस कन्या को मेरी स्त्री बनना है सो कहदो मैं वरूंगी तब उन पुत्रियों ने श्वेत पलित, जटाला, दुर्बल, भीख मांग खाने वाला जान के सबों ने थूंका और सबोंने कहा ऐसी बात कहते तुझ को लज्जा नहीं आती यह बात सुन यमदग्नि क्रोध से धमधमायमान किसी को कूबडी, कुरूप अनेक विकृति वाली बनादी। यमदग्नि वहां से निकल महिल के बाहिर चौक में आया वहां राजा की छोटी पुत्री रेणु में खेल रही थी उसको बीजोरे का फल दिखाके बोला हे रेणुका तूं मुझे वांछती है तब उस बालिका ने बीजोरा लेने को हाथ पसारा तब यमदग्नि ने उस बालिका को उठा लिया। राजा से कहा ये मुझे वांछती है तब राजा उसके श्राप के डरसे डरता विधि से उसके साथ उसका व्याह कर दिया। कितनीक गउऐं और कितना एक धन देकर विदा किया। तब यमदग्नि स्नेह के वश सब सालियों को यथा स्वरूप पीछा बना दिया उस रेणुका भार्या को लेकर अपने आश्रम में पहुंचा पीछे उस मुग्धा को पाल पोष प्रेम से बड़ी करी जब यौवनवंती हुई तब यमदग्नि ने अग्नि की साची से फिर उसके संग विवाह किया जब ऋतु धर्म को प्राप्त हुई तब कहने लगा, हे सुन्दरी, मैं तेरे वास्ते होम में डालने योग्य वस्तुओं का चरू साधता हूं जिससे तेरे सर्व ब्राह्मणों में उत्तम प्रतापधारी पुत्र होगा तब रेणुका ने कहा हस्तिनापुर में कुरुवंशी अनंतवीर्य राजा को मेरे से बड़ी बहिन व्याही है उसके वास्ते तूं क्षत्रिय चरू भी साधन कर, मंत्रों से संस्कार सिद्धकर तब यमदग्नि अपनी स्त्री वास्ते तो ब्राह्मण चरु और शालि वास्ते क्षत्रिय चरु दोनों सिद्ध किया, अब रेणुका ने विचार किया मैं अटवी में हरणी की तरह

रहती हूं तो मेरा पुत्र भी जंगल में रहेगा इस वास्ते मैं क्षत्रिय चरु भक्षण करूं जिससे मेरा पुत्र राजा होकर जंगलवास छोड़ दे ऐसा विचार आप तो क्षत्रिय चरु भक्षण कर गई बहिन को ब्राह्मण चरु भेजके खिलाया। रेणुका के राम नाम का पुत्र हुआ, बहिन के कृतवीर्य पुत्र हुआ, राम क्षत्री का तेज दिखाने लगा अन्यदा एक विद्याधर अतिसारी इन्होंके आश्रममें चला आया, व्याधि के वश आकाशगामनी विद्या भूलगया, तब राम ने उसकी औषधी तथा पथ्य सें सेवा करी, अच्छा हुआ तुष्ट मन से राम को परशु विद्या दी, राम उस विद्या को सरकंडे के बन में जाकर सिद्ध करी, उस शस्त्र विद्या के सिद्ध होने से जगत् विख्यात परशुराम नाम हुआ, एकदा रेणुका यमदग्नि को पूछ अपणी बहिन से मिलने हस्तिनापुर गई, उहां रेणुका अपने बहनोई से विषय सेवने लगी, उहां रेणुका के दूसरा पुत्र होगया पीछे यमदग्नि उस को लाने गया, आगे पुत्र युक्त देखी, रेणुका ने समझाया, मेरे आपके वीर्य की छोड़ बंधी थी, वो इहां अच्छा सुयोग्य खान पान से वध कर पुत्र होगया, यमदग्नि स्नेह के वश लुब्ध होगया सच है वृद्ध तो लुब्ध निश्चय होई जाता है, परंतु कतिपय तरुण पुरुष भी स्त्रियों के राग बद्ध बहुलतया दोष नहीं देखते हैं, यमदग्नि उस पुत्र को कंधारूढ़ कर स्त्री को आश्रम में ले आया, जब परशुराम ने माता के पुत्र देखा तब क्रोध में आकर माता का और उस बालक का परशु से मस्तक काट डाला, जब पहुंचाने आनेवाले राजपुरुषों ने जाकर यह वृत्तान्त राजा अनंतवीर्य से कहा तब राजा सैन्या लेकर आया, तापसों का आश्रम जलाया, सर्व तापस त्रास पा कर भगे, यह स्वरूप सुनते ही परशुराम, राजायुक्त सारी सैन्या को काष्ठवत् चीर के गेर दिया, तद् पीछे प्रधानों ने कृतवीर्य को राजा बनाया कृतवीर्य पिता का वैर लेने छुपकर यमदग्नि को मार के भग गया, तब परशुराम पिता को मरा देख हस्तिनापुर जाकर राजा कृतवीर्य को मार के राज्य सिंहासन पर वैठ गया, राज्य पराक्रमाधीन है, उस अवसर में कृतवीर्य की तारा नाम राणी, गर्भवती भाग के किसी जंगल में तापसों के आश्रम में गई, उन तापसों ने मठ के भूमिगृह में दया से छिपा रखी, उहां चौदें प्रथम देखा जो स्वप्न, उस से सूचित तारा ने पुत्र जना, सुभूम नाम

रखा, अब परशुराम का क्षत्रिय जाति वालों से ऐसा द्वेष वधा कि जहां क्षत्रिय होय उहां ही परशुराम का परशु जाज्वल्यमान होजावे, उन क्षत्रियों का मस्तक परशु से छेद डाले, ऐसे निक्षत्रणी पृथ्वी करता परशुराम एक दिन उसी वन में आ पहुंचा, जहां कि तापसाश्रम में पुत्र युक्त वह राणी थी, परशु चमकने लगा, तब परशुराम बोला, इहां कोई क्षत्रिय है, उसको जल्दी बतावो, तब दयावंत तापस बोले, हे राम! हम पहिले गृहस्थपणे जात के क्षत्रिय थे, तदपीछे राम ने उहां से निकल ७ वैर निःक्षत्रणी पृथ्वी करी, तब कातर क्षत्रिय लोक ब्राह्मण बणने को गले में यज्ञोपवीत डाली, अब परशुराम प्रसिद्ध २ क्षत्रिय राजाओं को मार २ के उनकी दाढाओं से एक बड़ा थाल भरा, आप निश्चिंत एक छत्र राज्य करने लगा, जगे २ ब्राह्मणों को राज्य दिया, एक दिन एक निमत्तक से प्रच्छन्न पूछा, मेरी मृत्यु स्वभाव जन्य है, या किसी के हाथ से, तब निमित्तिये ने कहा, जो आपने क्षत्रियों की दाढ़ाओं से थाल भरा है, वह थाल की दाढ़े, जिसकी दृष्टि से खीर बन जायगी और उस खीर को सिंहासन पर बैठ के खावेगा उसी के हाथ तुमारी मृत्यु है, यह सुन परशुराम ने दानशाला बनवाई, उस के आगे एक सिंहासन, उसके ऊपर वह दाढ़ों का थाल रखा, उसकी रक्षा वास्ते नंगी तलवारवाले पुरुष खड़े किये, अब इधर वैताढ्य पर्वत का राजा मेघ नामा विद्याधर किसी निमित्तिये को पूछने लगा, मेरी जो पद्म श्री कन्या है, उस का वर कौन होगा, तब निमित्तिये ने कहा, सुभूम तेरे वहिन का पुत्र, जो इस वक्त तापस के आश्रम में है, वह होगा, और वह छः खंडाधिपति चक्रवर्त्ती भी होगा।

तब मेघ विद्याधर उहां पहुंच के सुभूम को बेटी व्याही, उसका सेवक बनगया, एक दिन सुभूम अपणी माता को पूछने लगा, हे माता, क्या इतना ही लोक है, जिसमें अपणे रहते हैं, तब माता ने कहा, लोक तो इस से अनंत गुण है, उस में एक राई मात्र जगे में अपणे रहते हैं, इह लोक में प्रसिद्ध हस्तिनापुर नगर, उहां का राजा कृतवीर्य का तूं पुत्र है, पूर्वव्यवस्था सब कह सुनाई, सुनते ही मंगल के तारे की तरह लाल होकर

सीधा उहां से निकल हस्तिनापुर में आया, लोक कहने लगे, अरे तूं ऐसा सुर रूप जात का कौन है? सुभूम ने कहा, राजपूत हूं, लोक कहने लगे, अरे इन्द्र, तूं इस ज्वलितांगार में क्यों आया है? सुभूम ने कहा, परशुराम को मारने आया हूं, लोकों ने बालक जान के उसकी बात का कुछ खयाल नहीं करा, सुभूम उस दानशाला में पहुंच सिंहासन पर बैठगया, दैव विनियोग से डाढ़ों की खीर बनगई, तब उसको खाने लगा, रक्षक ब्राह्मण सुभूम को मारने दौड़े, तब उन ब्राह्मणों को मेघनाद विद्याधर ने मार डाला, तब कांपता होठों को चबाता क्रोधातुर हो परशुराम भागता २ आ पहुंचा, परशु मारने को चलाया, वह परशु बीच में से टूट पड़ा, उस परशु की विद्या देवी सुभूम के पुण्ययोग से भाग गई। सुभूम उस थाल को अंगुली पर घुमा के परशुराम को मारने फैंका, वह चक्र होकर परशुराम का शिर काट डाला, उस चक्र से सुभूम ८ मां चक्रवर्त्ती हुआ।

इस कथा की नकल जो यह कथा ब्राह्मणों ने बनाई है सो यथार्थ नहीं है जैसे वो कहते हैं परशुराम जब रामचन्द्र को मारने आया तब रामचन्द्र नरमाई से पगचंपी करके परशुराम का तेज हर लिया, तब परशु हाथ से गिर पड़ा और फिर पीछा नहीं उठा सका। हे ब्राह्मणों! वह रामचन्द्रजी नहीं थे, सुभूम चक्रवर्त्ती था, इस कथा कल्पित बनाने वालों ने परशुराम की हीनता दूर करने को रामचन्द्रजी की बात लिखी है। एक अवतार ने दूसरे अवतार की शक्ति खींचली परंतु यह नहीं सोचा कि दोनों अवतार अज्ञानी बन जांयगे जब परशुराम आपही अपने अंश को कुहाड़े से काटने लगा इन से ज्यादा अज्ञानी कौन होगा? और अवतार की शक्ति निकल जाने से परशुराम तो पीछे खलवत् निस्सार होकर मरा तो अवतार शक्ति रहित फिर तुम्हारे विष्णु में कैसे मिला होगा? इत्यादि, तद पीछे सुभूम षट् खंड में विजय कर २१ वेर निब्राह्मणी पृथ्वी करी, अपनी समझ से किसी ब्राह्मण को जीता नहीं छोड़ा तब भय से ब्राह्मण व्यापार, खेती, नौकरी, रसोई आदिक चारों वर्णों का काम करने लगे। ऋषि वेष त्यागन कर वनोवास प्रायः त्याग दिया। सुभम उन्हों को अन्यवर्णी समझ कर

मारा नहीं तब ब्राह्मण सुभूम के मरे बाद ऐसे को दैत्य, राक्षस आदि कर के लिखा। परशुराम क्षत्रियों की हत्या से, सुभूम ब्राह्मणों की हत्या से मर के अधोगति में गये।

इस सुभूम चक्रवर्त्ती से पहिले इस अंतर में छटा पुरुष पुंडरीक वासुदेव, आनंद बलदेव बली नाम प्रति वासुदेव को युद्ध में मार के छटा नारायण हुआ, और सुभूम के पीछे दत्त नाम वासुदेव, नंद नाम बलदेव प्रह्लाद प्रति वासुदेव को मार के सातमा नारायण हुआ।

तदपीछे मिथिला नगरी में इक्ष्वाकुवंशी कुम्भ राजा, प्रभावती राणी से मल्ली नाम पुत्री उगणीसमा तीर्थंकर हुआ।

तदपीछे राजगृही नगरी में हरीवंशी सुमित्र राजा, उसकी पद्मावती राणी से मुनि सुव्रत नामा तीर्थंकर २०मां उत्पन्न हुआ, इनों के समय महापद्म नामा नवमा चक्रवर्त्ती हुआ, इन सबों का चरित्र ६३ शलाका चरित्र में देख लेना, इन महापद्म चक्रवर्त्ती के भाई विष्णुकुमार हुए, उनों का संबंध इहां लिखता हूं।

हस्तिनापुर नगर में पद्मोत्तर नाम राजा, उसकी ज्वाला देवी राणी उनों का बड़ा पुत्र विष्णुकुमार और लघुभ्राता महापद्म हुआ, उस समय में अवंती नगरी में श्री धर्मराजा का मंत्री नमुचि अपर नाम बल ब्राह्मण ने मुनि सुव्रत तीर्थंकर के शिष्य श्रीसुव्रताचार्य्य के साथ धर्मवाद करा, बाद में हारगया, तब रात्रि को नंगी तलवार लेके आचार्य्य को वन में मारने चला, रास्ते में पगस्तंभित होगये, यह स्वरूप प्रभात समय देख राजा ने राज्य से निकाल दिया, तब नमुचि बल उहां से निकल हस्तिनापुर में महापद्म युवराज की सेवा करने लगा, किसी समय तुष्टमान हो कर महापद्म ने कहा, जो तेरी इच्छा हो सो वर मांग, उस ने कहा किसी समय ले लूंगा, अब राजा पद्मोत्तर विष्णुकुमार पुत्र के संग सुव्रत गुरु पास दीक्षा ले पद्मोत्तर मोक्ष गया, विष्णुकुमार तप के प्रभाव महालब्धि मान हुआ, इस अवसर में सुव्रताचार्य हस्तिनापुर में आये, तब नमुचिबल

ने विचारा, यह वैर लेनेका अवसर है, तब महापद्म चक्रवर्त्ति से बीनती करी, मैं वेदोक्त महायज्ञ करूंगा इसवास्ते पूर्वोक्त वर चाहता हूं, चक्रवर्ती ने कहा, मांग, तब बोला, कितनेक दिनों के लिये आपका राज्य मैं करूं, ऐसा वर याचताहूं, तब चक्री सर्वाधिकार कतिपय दिनों का दे, आप अंतेउर में चला गया, अब नमुचिवल नगर के बाहिर यज्ञ पाटक बनाया, उहां मुंज, मेखला, कोपीनादि दीक्षा धार के आसन ऊपर बैठा, अब शहर के सर्व लोक तथा सर्व दर्शनी भेट धर के नमस्कार करा, तब नमुचिवल ने पूछा ऐसा भी कोई है सो नहीं आया है, तब लोकों ने कहा, एक जैन सुव्रताचार्य नहीं आया, यह छिद्र पाके क्रोधातुर होके सुभटों को बुलाने भेजा, राजा चाहे कैसा हो, मानने योग्य है, आचार्य आये, तब आक्रोश कर कहने लगा, तुम क्यों नहीं आये, तुम वेद, धर्म के निंदक हो, इस वास्ते मेरे राज्य से बाहिर निकल जाओ, जो रहेगा, उसको मैं मार डालूंगा, तब गुरु मीठे वचन से समझाने लगे, हे नरेंद्र! हमारा ये कल्प नहीं, जो गृहस्थों के कार्य में जाना, लेकिन् अभिमान से नहीं, साधु अपने धर्मकृत्य में लगे रहते हैं, तब बड़ी कठोरता से नमुचिवल ने कहा, ७ दिन के अंदर मेरे राज्य से चले जाओ, तब आचार्य अपने तपोवन में आये, विचार करनेलगे, अब क्या करना, एक साधु बोला, महापद्म चक्रवर्त्ति का बड़ा भाई विष्णुकुमार महान् शक्तिवाला मेरु पर्वत पर है, वो आवे तो अभी शान्ति कर देगा, एक साधु बोला, मैं जा तो सक्ता हूं, पीछा आने की शक्ति नहीं, आचार्य बोले, तुझको विष्णुकुमार पीछा ले आयगा, तब वो साधु उड़के मेरु पर्वत गया, सर्व वृत्तांत सुनाया, तब विष्णुकुमार उसको हाथ में उठा के आचार्य के चरणों में लगे, गुरु आज्ञा ले, इकेले ही नमुचिवल के पास गये, और कहा, निःसंगी साधुओं से विरोध करना यह नरक का कारण है, साधु किसी का विगाड़ नहीं करते, तुच्छ क्षणिक राज के पाने से मदांध! अधम! साधुओं से नमस्कार कराने चाहता है, अरे नमुचिवल! इस अधम कृत्य का अभिमान त्याग दे, जो साधु सुख से धर्म ध्यान करे, नहीं तो तेरा अपराध तेरे को दुःख दाता होगा, साधु चौमासे में विहार करते नहीं, और छः खंड में तेरा राज्य इस अवसर में है, साधु

कहां जावे, तब बलस्तब्ध होकर बोला, ज्यादा मत बोलो, राज्य इस काल में ब्राह्मण का है, तेरे बिना बाकी साधुओं से कहदे ५ दिन के मध्य मेरा राज्य त्याग दे, तूं राजा का भाई मेरे मानने योग्य है, तुझको ३ पद जगे रहने को देता हूं, बाकी साधु जो रह जायगा उसको चोरवत् प्राणों से रहित करूंगा, तब विष्णुमुनि ने विचारा, ये साम वचन से माननेवाला नहीं, ये दुष्ट महापापी, साधुओं का परम द्वेषी है, इसकी जड़ ही उखाड़ डालनी चाहिये, कोप में आकर विष्णुमुनि वैक्रियपुलाकलब्धि से लाख योजन का रूप बनाया, एक डग से तो भरत क्षेत्र मापा, दूसरी डग से पूर्व पश्चिम समुद्र मापा और बोला, तीजे कदम की भूमि दे, नमुचिबल थर २ कांपते के तीसरा कदम शिर पर धरा, सिंहासन से गिरा, पृथ्वी में दबादिया, नमुचिबल ७मीं नरक में गया, तब इन्द्र के हुक्म से कोप शान्ति कराने देवतों को आज्ञा दी, देवदेवांगना मधुर गीतादि कानों में सुनाने लगे, ब्राह्मण सब स्तुति प्रार्थना से प्राण दान मांगते, इस मंत्र को बाढ स्वर से बोल २ रक्षा अपने २ वर्ग के बांधने लगे।

जैनराजा बलिमंत्री दानमंत्रो महाबलः।
तेनमंत्रेण यज्ञासे रक्ष २ जिनेश्वरः ॥ १ ॥

देवताओं की स्तुति से कोप शान्त मुनि होकर धीरे २ अंग संकोच गुरु पास जाकर आलोचना करी, प्रायश्चित्त ले जप तप कर केवल ज्ञान पाके मोक्ष गये, इस कथा को ब्राह्मणों ने बिगाड़ कर और ही पुराणों में लिखली है, विष्णु भगवान् को क्या गरज थी, जो तुमारे मंतव्य मुजिब यज्ञ करनेवाला धर्मी राजा बल के साथ छल करता, यह तो निःकेवल बुद्धिहीनों का काम है जो अपनी बेटियों से परस्त्रियों से विषय सेवन करा कहना, भगवान ने झूठ बोला, औरों से बुलाया, चोरी करी, औरों से कुसील भगवान् ने सेवन करा, छल से मारा, कपट करा, इत्यादि काम तो पापी अधमी के करने के हैं, परमेश्वर वीतराग सर्वज्ञ ऐसा काम कभी नहीं करता और ऐसा काम करे उसको परमेश्वर कभी नहीं मानना चाहिये।

बीसमें और इकीसमें तीर्थंकर के अंतर में श्री अयोध्या साकेतपुर